Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

* ओ३म् *

माण्डूक्योपनिषद्

का

प्रश्नोत्तर की रीति से व्याख्या सहित
हिन्दी अनुवाद ।

अनुवादक—

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी

न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्य दर्शन, वेदान्त दर्शन और उपनिषद् आदि और छोटे२ सैंकड़ों ट्रैक्ट आदि पुस्तकों के लेखक ।

प्रकाशक—

वज़ीरचन्द्र शर्मा—अध्यक्ष

वैदिक पुस्तकालय मोहनलाल रोड, लाहौर ।

आर्य्य सम्वत् १९७२९४९०३१ दया० १०७
सम्वत् १९८८ वि० १ दिसम्बर सन् १९३१

मैनेजर शरत्चन्द्र लखनपाल के प्रबन्ध से
बाम्बे मैशीन प्रेस मोहनलाल रोड लाहौर में छपा ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सूचना

पाठक गण पृष्ट २४ पंक्ति २० में से मैशीन पर छपते समय कुछ शब्द निकल गए थे उस पंक्ति को इस प्रकार पढ़ें।

(होता और भीतर का ज्ञान होता है।)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

॥ ओ३म् ॥

माण्डूक्योपनिषद्
का
हिन्दी अनुवाद

ब्रह्मविद्या में यह उपनिषद् सब से अधिक और अद्वैतवादियों को प्रिय है। इस उपनिषद् पर गौड़पादाचार्य जी ने माण्डूक्यकारिका लिखी है, जो नवीन वेदान्त की मूल समझी जाती है, यद्यपि गौड़पाद की कारिका के दो पादों का अनुवाद प्रथम पेश कर दिया गया है। परन्तु यह आवश्यक मालूम पड़ता है कि इस उपनिषद् का शेष पादों के सहित अनुवाद पेश किया जावे। वेदान्त, विज्ञान के जानने वालों के लिये उपनिषदों का अनुवाद भी इस रिसाला में क्रम से निकलता रहेगा।

मंत्र—ओमित्येतदक्षरमिदꣳसर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ॥ १ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दार्थ—ओम्=परमात्मा। इति=जो। एतद्=यह। अक्षरम्=नाश रहित है। इदं=यह। सर्वं=सब। तस्य=इसका। उपव्याख्यान=प्रकाशित करनेवाली है। भूतं=भूत। भवत्=जो वर्त्तमान है। भविष्यत्=जो आने वाला है। इति=जो। सर्वम्=सब है। ओङ्कार एव=ओङ्कार ही है। यत्=जो। च=और। अन्यत्=दूसरे। त्रिकालातीतं=तीनों कालों से पृथक् सर्वव्यापक है। तत्=वह। अपि=भी। ओङ्कार एव=ओङ्कार ही है।

अर्थ—एक नित्य वस्तु ओ३म् ही है, जो कुछ जगत् दृष्टि पड़ता है सब इसका प्रकाश करने वाला ही है। भूत, भविष्यत, वर्तमान सब ओङ्कार ही है। तीनों कालों से परे जो ब्रह्म अथवा प्रकृति अथवा जीव जो सत्स्वरूप हैं, वह भी सब ओङ्कार ही हैं। क्योंकि शक्ति और शक्ति वाला दो नहीं होते, इसी प्रकार प्रकृति और जीव परमात्मा की शक्ति कहने से परमात्मा के साथ ही आ जाते हैं। परमात्मा एक ही है, अतः परमात्मा की प्रजा जीवात्मा और इसकी सम्पत्ति नित्य मिलकर ही परमात्मा बनती है। क्योंकि तीन अक्षर मिलकर ओ३म् बना है, इसी प्रकार तीन वस्तुओं से परमात्मा ओङ्कार कहाता है। यदि व्याप्य प्रकृति न हो, तो परमात्मा को व्यापक अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आत्मा नहीं कह सकते। यदि शरीर में व्यापक जीवात्मा न हो, तो भी परमात्मा नहीं कह सकते। इसलिये ओङ्कार में ही सब आ जाता है, सब ओङ्कार की व्याख्या ही है। जैसे राजा की प्रजा और सम्पत्ति राजा की महिमा बताने वाली होती है। इसी प्रकार जीव के असंख्य होने और प्रकृति के महत्ता से परमात्मा के गुणों का ही प्रकाश होता है। जो कुछ बीत चुका है, इसकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय और मृत्यु परमात्मा की सत्ता का प्रकाश करती है; जो कुछ विद्यमान है, उसकी उत्पत्ति, स्थिति और नाश, परमात्मा की सत्ता का प्रकाश कर रही है। जो आगे होगा, वह भी इसी काम को करेगा। निदान कार्य, कारण, प्रकृति और जीव से ओ३म् ही का प्रकाश होता है। इस लिये सब ओ३म् ही की महिमा समझनी चाहिये।

मन्त्र—सर्वंᳬ ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽय-मात्मा चतुष्पात् ॥ २ ॥

शब्दार्थ—सर्वं=सब। हि=निश्चय करके। एतद्=यह। ब्रह्म=परमात्मा है। अयमात्मा=यह जो मेरे भीतर व्यापक है। ब्रह्म=परमात्मा है। सो=इसलिये। अयमात्मा=आत्मा। चतुष्पात्=चार भागों वाला है।

अर्थ—यह सब जगत जो कुछ दीख पड़ता है,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ज्ञानियों की दृष्टि में ब्रह्म की शक्ति प्रकाश होने से ब्रह्म ही है। योगी समाधि की दशा में अपने भीतर देखता हुआ परमात्मा के आनंद को अनुभव करके कहता है कि यह जो मुझ में व्यापक है, यह ब्रह्म ही है। सो यह आत्मा चार पाद वाला है। ज्ञानी पुरुष जब संसार में जगत के नियमानुकूल बनावट को देखता है, तो उसे विचार उत्पन्न होता है कि इसका सम्बंध ब्रह्म से है। जब स्वप्न की दशा में देखता है, तो वहां भी ब्रह्म की महिमा का पता लगता है। जो वस्तु जागृत दशा में देखी होती है, उनके संस्कार जो मन में स्थित हो चुके, दीखते हैं। जब स्वप्न अवस्था गाढ़ निद्रा में सो जाता है, तब भी ब्रह्म से ही आनंद प्राप्त करता है। जिस से संसार में रहते हुए भी दुख दूर हो जाते हैं। जब मुक्ति में शरीर त्याग देता है, तब भी ब्रह्म से ही आनंद प्राप्त करता है। यह ब्रह्म के चार पाद हैं। दूसरी प्रकृति सत्य है, जीव सत् चित्त है, ब्रह्म सच्चिदानंद और स्वतंत्र है। यह सत चित्त आनंद और स्वतंत्रता ब्रह्म के चार पाद हैं। अब उपनिषद्कार इस को अपने शब्दों में बताते हैं।

मंत्र—जागरितस्थानोबहिः प्रज्ञः सप्तांगएकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दार्थ—जागरितस्थानो=जागने की दशा अर्थात स्थूल शरीर जिसका स्थान है। बहिःप्रज्ञः=जिसकी बुद्धि बाहर की ओर काम करती है। सप्तांग=सात जिसके अंग हैं। एकोनविंशति मुखः=उन्नीस जिसके मुख हैं। स्थूल भुग=जो स्थूल विषयों को भोगता है। वैश्वानरः= जो सम्पूर्ण नरों को भोगने वाला है। प्रथमःपादः= प्रथम पाद है।

अर्थ—अब ब्रह्म के चार पाद बता कर उसके विभाग बताते हैं, जिसमें जीव जागने की अवस्था में काम करता है। जिसकी बुद्धि बाहर की ओर लगी होती है, जिसके सात अङ्ग और उन्नीस मुख हैं, जो स्थूल विषयों को भोगने वाला है वह वैश्वानर नाम वाला ब्रह्म का प्रथम पाद कहाता है।

प्रश्न—क्या निराकार चेतन्य के भी पाद हो सकते हैं?

उत्तर—यद्यपि ब्रह्म के पाद हो नहीं सकते, परन्तु समझाने के लिये कल्पना करते हैं, कि जीव की अवस्थाओं के विचार से ब्रह्मज्ञान भी चार भागों में होता है। जिस समय जीव जागता है और अपनी बुद्धि को बाहर के विषयों की ओर लगाता है। जब जीव का सात अंगों और उन्नीस मुखों से सम्बन्ध होता है। तब वह स्थूल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शरीर का अभिमानी होने से स्थूल विषयों को भोगता है। इस दशा में जो किसी क्षण में जीव का ब्रह्म से सम्बन्ध होता है, उस ब्रह्म को वैश्वानर के नाम से उच्चारण करते हैं। क्योंकि उस समय जगत् के मनुष्य विषय-भोग करते हुए ब्रह्म के आनन्द को विषयों का आनन्द विचार करते हैं, परन्तु वह आनन्द उत्तमानन्द नहीं होता।

प्रश्न—जीव के १९ मुख कौन से हैं ?

उत्तर—पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां और पांच प्राण और मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार यह सब जीव के मुख कहाते हैं। क्योंकि जिस प्रकार मुख के द्वारा खाना खाते हैं, इसी प्रकार इन्द्रियों इत्यादि के विचार से जीव बाहर के सुखों को भोगता है। कभी उसको सुख अनुभव होता है, कभी दुख अनुभव होता है। यदि यह उन्नीस न हों, तो जीव बाह्य ज्ञान को प्राप्त नहीं हो सकता। केवल स्वाभाविक ज्ञान जो उसका नित्य है, वही उसको ज्ञान होता है।

प्रश्न—अन्य शास्त्रों में सत्रह सूक्ष्म शरीर माने गये हैं। उन्नीस यहां पर बताये हैं, इनका कारण क्या है। और सत्य कौनसा है ?

उत्तर—इसमें अन्तःकरण की चार वृत्तियां हैं। एक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मनन वृत्ति, जब कि अन्तःकरण के द्वारा किसी वस्तु के होने न होने, सत् असत्, सुख दुःख के कारण इत्यादि होने का अन्वेषण करता है; उस दशा का नाम मन है। दूसरे, जब अन्तःकरण इन्द्रियों के साथ बाह्य वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करता है, उसका नाम बुद्धि है। तीसरे, जब किसी वस्तु का चिन्तन करता है, जैसे कोई मनुष्य सोचता है कि इस समय मेरे पास १०) रु० हैं, इससे व्योपार करके दश सहस्र कर लूंगा, पुनः एक लक्ष से एक बाटिका निर्माण कराऊंगा, इसमें सब देशों से एकत्र करके उत्तम उत्तम फल पुष्पादि लगाऊंगा, फिर उन्हें आनन्द से खाऊंगा। इस प्रकार की दशा का नाम चित्त है। चौथे, जब अपनी सत्ता और उसके सम्बन्ध वस्तुओं को अपना जानता हुआ प्रकाश करता है, इस दशा का नाम अहंकार है। कतिपय आचार्यों ने मन और चित्त और बुद्धि और अहंकार को एक मान कर, क्योंकि इनकी दशाओं में बहुत ही न्यून भेद है, एक स्वीकार कर लिया है। परन्तु वेदान्त शास्त्र ने जिसका उद्देश ही आत्मिक विद्या का प्रचार करना है, उस थोड़े से भेद से भी पृथकता प्रकट कर दी है, जिससे सूक्ष्म से सूक्ष्म भेद विदित हो जावे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न—अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि और चित्त, अहंकार नित्य हैं अथवा अनित्य ? ।

उत्तर—इनके दो भेद हैं; एक शक्ति, दूसरे करण। शक्तियां सब जीवात्मा का स्वभाव (गुण) होने से नित्य हैं। और कारण सब कार्य होने से अनित्य हैं।

प्रश्न—जब कि जीव की शक्तियां न्यूनाधिक होती हैं, जिन से उनका विकार होना स्वीकार किया जाता है। और जो वस्तु विकार वाली होती है, वह उत्पन्न होने वाली होती है। अतः वह शक्तियां उत्पन्न होने वाली हैं। और शक्तियां जीवात्मा का स्वाभाविक गुण आपने स्वीकार किया है और विकार वाली नाशवान् हैं। इसलिये जीवात्मा भी कार्य और नाशवान् स्वीकार करना पड़ेगा।

उत्तर—जीवात्मा की शक्ति बढ़ती घटती नहीं, किंतु उसके साधन अर्थात् कारण बढ़ते घटते हैं। दूसरे, शक्ति का न्यूनाधिक जीव के विचार से होता है। अतः साधन और विचार में परिवर्तन है, न कि जीवात्मा की शक्ति में। यथा हम कभी तो बालकों के बल से तमाचा मारते हैं, जब कि वह दोषी होते हैं। और कभी प्रेम से बहुत हलका मारते हैं। क्या इन दोनों दशाओं में हमारी शक्ति में भेद होता है अथवा विचार में। इसी प्रकार कभी नेत्र

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सूर्य की रोशनी में देखता है और पर्वत पर से देखता है, तो पचास और सौ कोस के वृक्ष तथा मकान देख पड़ते हैं। और दीप के प्रकाश में अथवा कूप के भीतर घुस कर देखते हैं, तो घर और कूप के बाहर की वस्तु भी नहीं देख पड़ती। क्या यह साधनों की न्यूनाधिकता है, अथवा नेत्र की शक्ति की। अतः साधन परिवर्तन होने से अनित्य हैं और शक्तियां एक रस अर्थात् नित्य हैं। कर्मेन्द्रियों की शक्ति साधनों और विचार से और ज्ञानेन्द्रियों के साधनों से न्यूनाधिक मालूम होती है। वास्तव में वह एक वर्ष है, इसलिये कार्यरूप न होने से शक्ति उत्पन्न होने वाली नहीं और न उन शक्तियों का भण्डार जीवात्मा उत्पन्न होने वाला है।

प्रश्न—बहुत से मनुष्य जीव को माया की कार्य और अविद्या उपाधि से अथवा इस अन्तःकरण से मिला हुआ मानते हैं और अंतःकरण के नाश से जीवात्मा का नाश स्वीकार करते हैं?

उत्तर—यह ब्रह्मविद्या अथवा वेदांत-शास्त्र के ज्ञान के कारण हैं। क्योंकि माया का कार्य अंत-करण उपाधि किसने बनाया और किसके वास्ते बनाया। यदि कहो ब्रह्म ने अपनी माया से बनाया तो प्रश्न यह होता है कि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ब्रह्म स्वाभाविक कर्त्ता है अथवा नैमित्तिक है। यदि कहो कि स्वाभाविक कर्त्ता है तो जीव नित्य हो जावेगा, इसका नाश मानना अविद्या होगी। क्योंकि ब्रह्म अपने स्वभाव से अंतःकरण बनाता ही रहेगा और उस उपाधि से ढपा हुआ होने से जीव भी बना रहेगा। यदि ब्रह्म नैमित्तिक कर्त्ता है, तो इरादा दो प्रकार का होता है। लाभदायक और अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करने का और प्राप्त हानिकारक वस्तु को नाश करने का। अब जिस वस्तु अर्थात् अंतः-करण को ब्रह्म ने उत्पन्न करने का विचार किया वह उस के लिये लाभदायक होना आवश्यक है। लाभदायक वह वस्तु होती है, जो दोष को दूर करे अथवा त्रुटि को पूरा करे। अब ब्रह्म ने अपने किस दोष को दूर करने और किस कमीं को पूरा करने के लिये अन्तःकरण बनाया। इसका पता नहीं लग सकता, क्योंकि ब्रह्म में न तो कमी है और न कोई दोष है। जब अन्तःकरण के बनाने की आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती, तो विचार से यह कार्य उपाधि उत्पन्न नहीं हो सकती, जिससे जीव का उत्पन्न होना और नाश होना सम्भव हो। अतः जीव को अनादि मानना ही ठीक है। जीव बिना अन्तःकरण के न तो अपने स्वरूप को जान सकता है और न प्रेम के आनन्द को प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करने के जो साधन हैं, वह कर सकता है। इस लिये जीवों के लिये माया से अपनी दया के कारण अन्तःकरण और सब जगत बनाता है।

प्रश्न—ब्रह्म में अन्तःकरण के न होने से माया के गुणों को भोगने की शक्ति न थी, इस लिये उसने अन्तःकरण को बना कर अपनी इस कमी को पूरा किया।

उत्तर—अन्तःकरण से सर्वज्ञ ब्रह्म अल्पज्ञ हो गया, जिससे ब्रह्म में दोष उत्पन्न होगया और कोई काम दोष बढ़ाने को नहीं किया जाता। अतः यह विचार सत्य नहीं। दूसरे भोग सुख, दुःख बुद्धि का नाम है। दुःख भोगने की तो किसी को इच्छा नहीं होती और सुख प्रकृति का गुण नहीं। इस लिये दुःख स्वरूप प्रकृति के गुणों के भोगने के योग्य न होना उत्तमता है, कमी नहीं। अतः उत्तमता को दूर करने और दोष को उत्पन्न करने के लिये कोई बुद्धिमान मनुष्य भी काम नहीं करता। तो सर्वज्ञ ब्रह्म किस प्रकार कर सकता है। अतः ब्रह्म को जीव बनाना अपने को दोषी बनाना है, जो असम्भव है। ऐसी अविद्या ब्रह्म में नहीं आ सकती, जिससे वह आनन्द स्वरूप होकर दुःख भोगने की इच्छा करे, सर्वज्ञ होकर अल्पज्ञ बन जावे। क्योंकि ऐसा मानना वेद विरुद्ध है,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस लिये सत्य नहीं। दूसरे ब्रह्म ने अन्तःकरण किस से बनाया। यदि कहो माया से, तो माया गुण है, अथवा द्रव्य और नित्य है अथवा अनित्य। यदि कहो नित्य है, तो अद्वैत सिद्धान्त गिर गया। क्योंकि ब्रह्म के साथ माया भी नित्य होगई। यदि कहो अनित्य है, तो उसको ब्रह्म ने किस से बनाया। यदि माया का उपादान कारण कुछ और बताना होगा, तो इस के सम्बन्ध में भी यही शङ्का होगी। यदि माया को ब्रह्म का गुणी मान कर अद्वैत बताओगे, तो गुण से गुणी उत्पन्न नहीं हो सकता। इस लिये संसार में एक भी उदाहरण नहीं मिल सकता, जहां गुण से गुणी उत्पन्न होता दृष्टि पड़े।

प्रश्न—क्या तुम ब्रह्म को अद्वैत नहीं मानते ?

उत्तर—हम ब्रह्म को अद्वैत इस प्रकार मानते हैं कि वह नित्य है। उसका ऐश्वर्य प्रकृति अथवा माया भी नित्य है। किसी स्वामी की सम्पत्ति उसको मिल नहीं सकती। इस लिये प्रकृति की विद्यमानता में उसका स्वामी ब्रह्म अद्वैत ही बना रहता है। दूसरे, जो ब्रह्म राजा है, जीव उसकी प्रजा है। किसी राजा की प्रजा भी उसके समान नहीं कही जा सकती, किन्तु सम्पत्ति और प्रजा राजा को वास्तव में राजा सिद्ध करने वाली होती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नहीं तो बिना सम्पत्ति और प्रजा के राजा शतरञ्ज के खेल से अधिक क्या मान रख सकता है । यदि राजा नित्य होगा तो उसकी सम्पत्ति और प्रजा भी नित्य होगी । जिसकी सम्पत्ति और प्रजा नित्य न हो, वह बनावटी राजा होगा । चाहे वह राज उसने स्वयम् उत्पन्न किया हो परन्तु नित्य राजा कभी नहीं होगा।

प्रश्न—यह सब विद्वानों का एक सिद्धान्त है कि ब्रह्म सजाति विजाति और स्वगति भेद से शून्य है । यदि जीव प्रकृति को ब्रह्म से अलग सत् माना जावे, तो विजाति भेद तो मौजूद रहा, जिससे सिद्धान्त बिगड़ जाता है।

उत्तर—प्रथम तो ब्रह्म में जाति ही नहीं, क्योंकि जाति बहुतों में होती है । और ब्रह्म एक है, इसमें जाति का लक्षण पाया नहीं जाता । दूसरे जाति का चिह्न आकृति है और ब्रह्म निराकार है; इसलिये इसमें जीव मौजूद नहीं । जब ब्रह्म में जाति नहीं, तो समान जाति और पृथक् जाति हो ही नहीं सकती । तीसरे विजाति का अर्थ यहां पृथक् जाति नहीं, किंतु विरुद्ध जाति है । और जीव प्रकृति ब्रह्म की प्रजा और सम्पत्ति है, इस कारण विरुद्ध है । नहीं तो विजाति वस्तु किस प्रकार हो सकती है ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न—सात अङ्ग कौन से हैं ?

उत्तर—अग्नि इसका घर, चन्द्र-सूर्य नेत्र, वायु-प्राण, वेद उसकी वाणी अथवा रसना, दिशा-श्रोत्र, आकाश-नाभि, पृथिवी पांव हैं।

प्रश्न—अग्नि को सिर और पृथिवी को पांव क्यों कहा ?

उत्तर—अग्नि सतोगुणी होने से सब से ऊपर का भाग अर्थात सिर है अर्थात सतोगुण जीव मनुष्य जाति का सिर अर्थात सब से उच्च है। और पृथिवी तमोगुण है और पांव सब से नीचे हैं। इस कारण बताया कि तमोगुणी जीव सब से नीचे हैं, रजोगुणी और श्रोत मध्यम हैं।

मन्त्र—स्वप्नस्थानोऽन्तः प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक्तैजसो द्वितीय पादः॥

शब्दार्थ—स्वप्नस्थान=स्वप्न अवस्था। अन्तः प्रज्ञः=भीतर की ओर है बुद्धि जिसकी। सप्ताङ्ग=सात अंग हैं। एकोनविंशतिमुखः=उन्नीस जिसके मुख हैं। प्रविविक्तभुक्=बाह्य विषयों के न होने पर भोगने वाली है। तेजसः=तैजस नाम वाला आत्मा। द्वितीयपादः=दूसरा पाद है।

अर्थ—जिस अवस्था में जीवात्मा स्वप्न देखता है,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उस समय उसकी बुद्धि अर्थात् मन के जानने वाली वृत्ति अथवा इसका स्वाभाविक ज्ञान संसार के बाह्य विषयों से सम्बंध न रखता हुआ सात अंगों और उन्नीस मुखों से जिनका उपर्युक्त वर्णन हुआ, उन्हीं पदार्थों को भोगता है कि जिनके संस्कार जागने की दशा में मन पर पड़ गये हैं। इस अवस्था में इसका नाम तैजस कहलाता है और यह दूसरा पाद है।

प्रश्न—क्या स्वप्न अवस्था में वही पदार्थ दृष्टि पड़ते हैं जिनके संस्कार जागने की अवस्था में पड़ गये हैं, अथवा अन्य वस्तु भी दृष्टि पड़ सकती है।

उत्तर—जागृत अवस्था में तो जीवात्मा बाह्य पदार्थों के फोटू उतारता है। जिस प्रकार फोटूग्राफर के कैमरे में दो शीशा होते हैं, एक बाहर का शीशा दूसरा भीतर का और प्रकाश की किरणें उस वस्तु के प्रतिबिम्ब को प्रथम शीशा पर डालती हैं, तो वह उलटा पड़ता है। जब दूसरे शीशा पर जाता है, तो सीधा हो जाता है। इसी प्रकार जीवात्मा फोटूग्राफर के लिये परमात्मा ने यह मनुष्य का शरीर कैमरा बना दिया है। जिसके बाहर के शीशा तो इंद्रियां हैं और भीतर का शीशा मन है। इंद्रियों का सहायक प्रकाश उनके विषय का फोटू इंद्रियों पर डालता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है, जिससे वह उलटा होता है, और मन पर जाकर सीधा हो जाता है। जब जीवात्मा बाहर के शीशों को बंद कर देता है, तो नवीन फोटू उतरने बंद हो जाते हैं। केवल जो कुछ फोटू में उतरा हुआ है, उसी को देखता है। जो वस्तु बाहर न होगी, उसका चित्र शीशा पर नहीं आ सकता। जो चित्र शीशा पर न हो, उसको कैसे देख सकते हैं। अतः स्वप्न में वही जाना जाता है जो कि जागृत अवस्था में देखा हुआ होता है। अतिरिक्त जागृत के देखे हुए संस्कारों के स्वप्न में कुछ भी नहीं आ सकता। जागृत जीवात्मा के फोटू खींचने की अवस्था का नाम है। और स्वप्न उन फोटू के देखने का नाम है।

प्रश्न—हम बहुत सी वस्तुएं स्वप्न में देखते हैं कि जिन को हम ने जन्म भर में कहीं नहीं देखा ?

उत्तर—यदि इसी जन्म के संस्कार मन में होते, तो यह कहना ठीक था। परंतु मन में सहस्रों जन्मों के संस्कार विद्यमान होते हैं, जो वस्तुतः हमारी देखी हुई वस्तुओं के प्रतिबिम्ब होते हैं। परंतु अल्पबुद्धि हम समझते हैं कि वह हमारी देखी हुई नहीं। वास्तव में जब जीव मुक्ति से लौट कर योनिज सृष्टि में आता है, तब उसको नवीन मन मिलता है। और इस समय से ले कर अब तक जितने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जन्म व्यतीत हुए हैं, सब के संस्कार हमारे भीतर प्रस्तुत है। जिस को योगीजन जानते हैं, परंतु दूसरों को ज्ञान नहीं होता।

प्रश्न—क्या कारण है कि हमारे भीतर जो संस्कार विद्यमान हैं उनको भी हम नहीं जानते ? और योगी किस प्रकार जानते हैं ?

उत्तर—यदि तुम एक खत्ता में दो फीट गेहूँ (गोधूम) भर दो उस के ऊपर दो फुट चने डाल दो, उस के ऊपर दो फुट यव डाल दो उसके ऊपर दो फुट मकई; इसी प्रकार बीस भांति के अन्न इस खत्ते में भर दो। फिर ऊपर से देखो तो सब से पीछे जो चावल डाले हैं वही दृष्टि पड़ेंगे। नीचे वाले सब अन्न मौजूद होते हुए भी दृष्टि नहीं आवेंगे। यही संस्कारों की अवस्था है। जो समीप के होते हैं, वह स्मरण रहते हैं; जितनी देर होती जाती है, वह नवीन पड़ने वालों के नीचे दब जाते हैं। जिस को सर्व मनुष्य अनुभव नहीं कर सकते। जो खोद कर देखता है, उसको मालूम होते हैं। योगी का मन और विचार-शक्ति ठीक होती है, इस कारण वह इन संस्कारों को मालूम कर सकता है। जैसाकि महात्मा कृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि—"हे अर्जुन ! मेरे तेरे बहुत से जन्म

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

व्यतीत हुए हैं। परन्तु मैं उन जन्मों को जानता हूं और तू नहीं जानता।

प्रश्न—बुद्धि स्वीकार नहीं करती कि योगी का ज्ञान इतना बढ़ जावे? यद्यपि हम गीतादि अवलोकन करते हैं, विद्वानों से श्रवण करते हैं, परन्तु बिना युक्ति मानने को उद्यत नहीं।

उत्तर—जिस प्रकार गंगा एक धार में बहती है, तो इस में यह शक्ति होती है कि बड़े बड़े मकानों को बहा ले जाती है। परन्तु जब उस गंगा में नहरों के द्वारा छोटी नालियां कर दी जाती हैं, तो वह एक ईंट को भी बहा नहीं सकती। ऐसे ही जब मन का मात्र वृत्तियों के एकत्र होने से एक ओर चलता है, तो बड़े बड़े पदार्थों का ज्ञान हो सकता है, सूक्ष्म तथा दूर की वस्तु को जान सकता है। परन्तु जब मन वृत्ति फैल जाती है, तो उसकी शक्ति न्यून हो जाती है।

प्रश्न—जब कि मन भी आत्मा से बाहर है; तो उस का भीतर स्थान क्यों बताया?

उत्तर—इंद्रियों की अपेक्षा मन भीतर है अर्थात इंद्रियां बाहर का शीशा और मन भीतर का शीशा है। इस कारण भीतर स्थान में बुद्धि का काम करना बताया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न—जागृत और स्वप्न अवस्था में क्या अन्तर है?

उत्तर—हम ऊपर कथन कर आये हैं, कि जागृत अवस्था में बाहर की वस्तुओं का फोटू लेता और उससे दुःख सुख अनुभव करता है। और स्वप्न अवस्था में बिना बाहर की वस्तु होने के, भीतर ही फोटू को देखता है और इससे दुःख सुख मानता है। अतः जीव की इस अवस्था को जब बाहर के विषय की उपस्थिति में सुख दुःख को अनुभव करता है, पशु कहते हैं। और जब बाहर के विषयों की अनुपस्थिति में सुख दुःख को भोगता है, उस समय तैजस कहाता है।

प्रश्न—स्वप्न में जिन वस्तुओं को भोगते हैं, उस में तो प्रभाव शरीर पर भी पड़ जाता है। लेकिन फोटू के देखने की दशा में प्रभाव शरीर पर नहीं पड़ता।

उत्तर—यदि कभी स्वरूपवान का फोटू देखते हैं, तो प्रसन्नता, और निकृष्ट आकृति का फोटू देखने से घृणा उत्पन्न होती है। सहस्रों मनुष्य फोटू देखने से ही मस्त हो गये। इस कारण जो प्रभाव स्वप्न से शरीर पर मन के द्वारा पड़ता है, वही फोटू के देखने से भी पड़ता है।

मन्त्र—यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—यत्र=जिस अवस्था में। सुप्तो=सोया हुआ न=नहीं। कश्चन कामं=किसी काम को। कामयते=इच्छा करता। न=नहीं। कश्चन=कोई। स्वप्नं=स्वप्न। पश्यति=देखता है। तत्=वह। सुषुप्तम्=सुषुप्ति की अवस्था है। सुषुप्तस्थान=उस स्थान पर। एकीभूतः=समस्त ज्ञान। एकत्रित होकर। प्रज्ञानघनः=अंधेरी रात्रि की भांति विवेक रहित ज्ञान। एव=है। आनन्दमयः=आनन्द युक्त। आनन्दभुक्=आनन्द को भोगता है। चेतोमुखः=केवल स्वाभाविक ज्ञान ही जिसका मुख है। प्राज्ञः=प्राज्ञ नाम वाला। तृतीय पादः=यह तीसरा पाद है।

अर्थ—जब यह जीवात्मा बाहर के ज्ञान से पृथक् होकर ऐसी अवस्था में चला जाता है, जहां उसकी इच्छा शेष नहीं रहती और न किसी प्रकार का स्वप्न देखता है। अर्थात् पूर्व देखे हुए ज्ञान का भी कुछ प्रभाव शेष नहीं रहता। अर्थात् बाहर के ज्ञान से निःसम्बन्ध होकर और बाहर के ज्ञान के कारण इंद्रियों और मन के सम्बन्ध को त्याग कर जब जीव भीतर की ओर लग जाता है, उस अवस्था का नाम सुषुप्ति है। उस अवस्था में सब बाह्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ज्ञानों के दूर होजाने से, विवेक से रहित ज्ञान; जैसे अंधेरी रात में नेत्र लाल काले रूप के विवेक से रहित होकर अंधेरा ही अंधेरा देखते हैं। इसी प्रकार जीवात्मा भीतर देखता है, उस समय एक ही दृष्टि आता है। और आनन्द स्वरूप परमात्मा के आनन्द को जो बाहर की ओर लग जाने से दूर होगया था, भोगता है। उस समय भोगने का साधन केवल स्वाभाविक ज्ञान जो जीवात्मा का जातीय गुण है, प्रस्तुत होता है। कोई अन्य यन्त्र मन इत्यादि नहीं होता। इस अवस्था में जीव का नाम प्राज्ञ होता है। यह तीसरा पाद है।

प्रश्न—क्या स्वप्न की दशा में जीवात्मा आनन्द भोगता है ?

उत्तर—अवश्य, तीन दशाओं में जीव को ब्रह्म का गुण आनन्द मिलता है। एक समाधि की अवस्था में, दूसरे सुषुप्ति की अवस्था में, तीसरे मुक्ति अवस्था में। अतएव महर्षि कपिल जी सांख्यदर्शन में लिखते हैं—"समाधि सुषुप्ति मोक्षेषु ब्रह्म रूपिता।" अर्थात् समाधि, सुषुप्ति और मुक्ति इन तीन अवस्थाओं म सतचित्त स्वरूप आत्मा ब्रह्म के गुण नैमित्तिक आनन्द से ब्रह्मरूपिता अर्थात् सच्चिदानन्द अवस्था को प्राप्त होता;

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अर्थात उस अवस्था में जीव भी सच्चिदानन्द कहाता है। जैसे लोहे का गोला अग्नि में पड़ने से उष्ण होकर अग्नि के गुण वाला हो जाता है, तो उसमें अग्नि का गुण जलाना इत्यादि मौजूद होते; परन्तु अपने गुण भार इत्य दि भी उपस्थित रहते हैं। इसी प्रकार जीव में ब्रह्म का गुण आनन्द आ जाता है; परन्तु उसका अपना गुण अल्पज्ञता भी मौजूद होती है। जिस प्रकार अग्नि रूप लोहे के गोले को अग्नि कह सकते हैं। ऐसे ही समाधि की अवस्था में जीव को ब्रह्म भी कह सकते हैं। परन्तु वह कहना उपचार से होता है, वास्तव में नहीं।

प्रश्न—समाधि, सुषुप्ति और मुक्ति के स्वरूप में क्या अंतर है?

उत्तर—जब ज्ञान सहित और शरीर रहित ब्रह्म का जीव से सम्बन्ध होता है, उस अवस्था का नाम समाधि है। और जब शरीर सहित और ज्ञान रहित जीव का ब्रह्म से सम्बन्ध हो, उस अवस्था का नाम सुषुप्ति है। और शरीर रहित और ज्ञान सहित जीव का ब्रह्म से सम्बन्ध हो, उस अवस्था का नाम मुक्ति है।

प्रश्न—क्या स्थूल शरीर की विद्यमानता में ब्रह्म से जीव का सम्बन्ध हो सकता है?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उत्तर—जब तक स्थूल शरीर का जीव को अभिमान है, तब तक तो ब्रह्म से सम्बन्ध हो नहीं सकता। परन्तु समाधि और सुषुप्ति में जब अभिमान नहीं रहता, तो ब्रह्म से सम्बंध हो जाता है। क्योंकि जीव को बाह्य वस्तुओं से सम्बंध कराने वाला अहङ्कार ही है, और समाधि, सुषुप्ति की दशा में अहङ्कार विद्यमान नहीं होता। जब अहङ्कार न हो, तो उसका प्रकृति से सम्बंध नहीं हो सकता। जब प्रकृति से सम्बंध नहीं, तो ब्रह्म के साथ सम्बंध अवश्य होगा। क्योंकि चेतन जीवात्मा बिना सम्बंध के नहीं रहता।

प्रश्न—क्या सुषुप्ति में ज्ञान रहता है? जिससे वह आनन्द भोगता है।

उत्तर—जीवात्मा का स्वाभाविक गुण ज्ञान है, वह जीव से किस प्रकार पृथक् होना हो सकता है। जिस प्रकार अग्नि से उष्णता का पृथक् असम्भव है, ऐसे ही जीवसे ज्ञान का पृथक् होना भी असम्भव है यदि बाहरी ज्ञान के साधन होंगे, तो बाहर की चीजों को जानेगा, यदि साधन न होंगे, तो अन्दर की चीजों को जानेगा। अतः जब जाग उठता है, तो कहता है कि आज मैं सुख से सोया जिस से स्पष्ट विदित होता है कि उसको इस बात का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ज्ञान था कि सुख है। यद्यपि बाहरी पदार्थों से बेखबर होता है, परन्तु ज्ञान से शून्य नहीं।

प्रश्न—बहुत मनुष्य कहते हैं कि सोने के समय ज्ञान नहीं होता। जब जाग कर देखता है, तब कहता है। क्यों कि जागने से पूर्व कोई नहीं कहता।

उत्तर—यदि ऐसा स्वीकार किया जावे, तो मूर्खता ही कहलावेगी। क्योंकि जिस समय ज्ञान नहीं था, उस समय सुख था। और जब ज्ञान हुआ, तब सुख नहीं। तब सख से सोने को किस प्रकार प्रकट कर सकते हैं। ऐसा कहने वाले महाशय सुख के स्वरूप से भी अनभिज्ञ हैं। क्योंकि सुख दुःख दोनों बुद्धि अर्थात् ज्ञान हैं। यदि ज्ञान न हो, तो सुख कह ही नहीं सकते।

प्रश्न—फिर योगदर्शन में क्यों लिखा है कि ज्ञान की अभाव वृत्ति का नाम नि[illegible] है। क्या पातञ्जलि को भी सुख का स्वरूप विदित नहीं था।

उत्तर—योगदर्शन के कर्त्ता का आशय बाह्य ज्ञान से है, अतः निद्रा की अवस्था में बाहरी ज्ञान का अभाव होता है।

प्रश्न—इसका क्या प्रमाण है कि बाहर का ज्ञान नहीं [illegible] र क ज्ञान होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उत्तर—प्रथम तो जीवात्मा का चेतन होना ही इस का प्रमाण है। क्योंकि चेतन किसी समय भी ज्ञान से शून्य नहीं रह सकता। द्वितीय, सुषुप्ति में सुख होना भी इस बात का प्रमाण है कि सुखानुकूल ज्ञान का नाम है। तृतीय, जाग कर यह कहना कि आज ऐसा सुख से सोया कि कुछ खबर भी नहीं रही। जिससे स्पष्ट विदित है कि बाहर की तो बेखबरी थी और सुख की सुधि थी। अब जीव की तीनों अवस्थाओं का कथन करके जिससे भीतर जाकर जीव समाधि, सुषुप्ति और मुक्ति में आनन्द को प्राप्त होता है, उस ब्रह्म का कथन करते हैं।

मंत्र—एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः। सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—एषः=यह। सर्वेश्वरः=सब का स्वामी। एषः=यही। सर्वज्ञः=सब कुछ जानने वाला। एषः=यह। अन्तर्यामी=सब के भीतर रहकर नियमानुकूल चलाने वाला। एषः=यही। योनिः सर्वस्य=सब जगत् का कारण। प्रभव=उत्पन्न होने। अप्ययौ=सुख पाने। भूतानाम्=भूतों के।

अर्थ—यह परमात्मा सब का स्वामी है, जो सब के कर्मों को जानने वाला है। जो सर्वव्यापक होकर उनको

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(सब को) नियमानुकूल चला रहा है, यही सबका निमित्त कारण है और अपने ऐश्वर्य से ही कुल जगत को बनाता है और सम्पूर्ण जीव उसी से सुख पाते हैं। जब जीव अपनी तीन दशाओं से पार होकर, भीतर जाकर परमात्मा के दर्शन करता है। तब उसको परमात्मा के आनन्द की प्राप्ति होती है। तब वह यह कहता है कि यह जो मेरा अंतर्यामी है, यही सब का स्वामी, यही सब का ज्ञाता यही सब जगत का अपनी सामग्री से उत्पादक है। इसी से सब को आनंद प्राप्त हो सकता है।

प्रश्न—प्रायः मनुष्य कहते हैं कि सुषुप्ति अवस्था का अभिमनी जो जीवात्मा है, वही सर्वज्ञ ईश्वर इत्यादि है।

उत्तर—ऐसा मानना ठीक नहीं, क्योंकि उस दशा में किस का अंतर्यामी होगा। सुषुप्ति की दशा में भी अंतर्यामी होना आवश्यक है, उस समय किसका अंतर्यामी होगा; क्योंकि बाहर के विषयों से तो कोई सम्बन्ध नहीं। अतः सुषुप्ति की दशा में जीव का अंतर्यामी है। पूर्व तो यह संदेह हो सकता था कि आनंद बाहरी विषयों से मिलता है। जागृत में बाहरी विषय और स्वप्न में उसका प्रतिबिम्ब आनंद का कारण कह सकते थे। अतः सुषुप्ति की दशा में न तो बाहर के विषय ही प्रस्तुत हैं न उनका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रतिविम्ब प्रस्तुत है। अब जिससे जीव आनंद को प्राप्त होता है, वह कोई बाहरी वस्तु नहीं, किंतु वह भीतर वास करने वाला है। उसी के यह लक्षण प्रकट किये हैं।

प्रश्न—यहां तो ओंकार जो परमात्मा है उसके चार पाद बताये हैं, जिस से जीव ब्रह्म का भेद प्रकट किया है। तुम और ही ओर चल रहे हो।

उत्तर—आत्मा शब्द का अर्थ है व्यापक। उस की जो चार सीढ़ियां हैं, वह आत्मा के चार पाद। पहले जागृत अवस्था में जिस स्थूल शरीर का अभिमानी जीवात्मा है, उस के भीतर जो व्यापक है, वह सूक्ष्म शरीर है। सूक्ष्म शरीर के सूक्ष्म होने से उस में व्यापक कारण शरीर है। कारण शरीर से सूक्ष्म होने के कारण व्यापक जीवात्मा है। और जीवात्मा से सूक्ष्म होने के कारण व्यापक परमात्मा है। जो मनुष्य आत्मज्ञान के तीन मार्गों को व्यतीत करके चौथे मार्ग में पहुंचते हैं, तो उनको जीवात्मा अर्थात् अपने भीतर परमात्मा के दर्शन होते हैं। और उस से वह आनन्द को प्राप्त करके कहते हैं कि यह जो मुझ में व्यापक है, वह ब्रह्म है। तीन मार्गों में तो जीव व्यापक है, चौथे मार्गमें जीव व्याप्य और ब्रह्म व्यापक है। यद्यपि जीव ब्रह्म में कोई दूरी नहीं होती, इस कारण अभेद कहते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हैं। यथा नेत्र में अञ्जन है, अब नेत्र और अञ्जन में दूरी नहीं। क्योंकि दूरी तीन प्रकार की होती है, एक देश की दूसरे काल की, तीसरे ज्ञान की दूरी। नेत्र और अञ्जन देश और काल की दूरी से तो पृथक् होने से, केवल ज्ञान की दूरी है। जब जीवात्मा अपने ज्ञान को बाहर की ओर से हटाकर भीतर देखता है, वह ज्ञान की दूरी भी दूर हो जाती है। इसी दूरी के दूर करने का नाम अभेदज्ञान है; न कि जीव ब्रह्म को एक मानने का।

प्रश्न—जीव ब्रह्म के दो होने में क्या प्रमाण है ?

उत्तर—वेदांत शास्त्र में जीव ब्रह्म के दो होने में इतने प्रमाण दिये हैं कि जिस से किसी मूर्ख को भी इनका एक होना मालूम नहीं होता। प्रथम, ब्रह्म का लक्षण सच्चिदानन्द ही इस बात का प्रमाण है। द्वितीय, ब्रह्म का जीव के भीतर होना जैसा कि बृहदारण्यकोपनिषद् की श्रुति से प्रकट होता है। तृतीय, ब्रह्म के चार पाद होना। चतुर्थ, वेदांतके सूत्रों में स्थान स्थान पर व्यास जी का यह बताना कि श्रुति ने जीव ब्रह्म का भेद बताया है। जिस को हम वेदांतदर्शन के भाष्य में प्रकट कर चुके हैं। इस कारण अभेद पाद का तात्पर्य इतना ही है कि जीव ब्रह्म में दूरी नहीं। जिस के लिये किसी पैगम्बर (दूत) की आवश्यकता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पड़े। किंतु अन्तःकरण के दर्पण को शुद्ध कर के भीतर देखने की आवश्यकता है।

प्रश्न—ब्रह्म के लिये इतने विशेषण क्यों दिये?

उत्तर—पहले कहा यह ब्रह्म सब का स्वामी अथवा ईश्वर है। परन्तु वेदांतदर्शन में मुक्त जीव का नाम भी ईश्वर स्वीकार किया गया है। फिर जीव को अल्पज्ञ समझ कर सर्वज्ञ बताया। फिर शंका हुई कि मनुष्य योगियों को भी सर्वज्ञ कहते हैं। इस कारण अन्तर्यामी कहा। क्योंकि किसी जीव के भीतर कोई दूसरा जीव नहीं जा सकता। यदि अन्तर्यामी शब्द न देते, तो उपाधि कृत भेद वालों का मत बन सकता था परन्तु श्रुति ने अन्तर्यामी शब्द देकर जीव ब्रह्म को एक मानने वालों का गढ़ ही गिरा दिया। यहां तक कि आनन्दगिरि जैसे अद्वैतवादियों को मानना पड़ा कि किसी दूसरे को भीतर प्रवेश होकर नियमानुकूल चलाने की सामर्थ्य नहीं। फिर इस बात को स्वीकार करने के लिये सारे जगत का कारण बता दिया, जिस से किसी को जीव भ्रम न रहे। क्योंकि वेदान्तदर्शन में स्थान स्थान पर सिद्ध कर दिया है कि जीव अथवा प्रकृति जगत कर्त्ता नहीं। इस के पश्चात यह कह कर कि उससे आनन्द को प्राप्त करते हैं, अतः आनन्द

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्वरूप तो अतिरिक्त ब्रह्म के कोई भी नहीं। जिस पर वेदांत के प्रथम पाद में अत्यन्त सबल विचार किया गया है। क्या इन विशेषणों को देख कर भी जीव ब्रह्म के एक होने का ख्याल रह सकता है? निस्सन्देह जो नेत्रों में पट्टी बांध कर इसको देखते हैं, तो इसका उपाय क्या हो सकता है। अब उस ब्रह्म को जीव से पृथक् करते हैं।

मन्त्र—नान्तः प्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञान घनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। अदृष्टम-व्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म-प्रत्ययसारं प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—नांतः प्रज्ञं=भीतर की ओर ज्ञान नहीं। न वहिः प्रज्ञं=बुद्धि नहीं जाती। नोभय प्रज्ञं=न दोनों ओर भीतर बाहर बुद्धि जाती है। न प्रज्ञान घनं=न अंधेरे की ओर एक ही ज्ञान होता है। नः=नहीं। प्रज्ञं=प्राप्त किया हुआ ज्ञान। न=नहीं। अप्रज्ञं=ज्ञान की जड़ता। अदृष्टम्=नेत्रों के देखने योग्य नहीं। अव्यवहार्यम्=व्यवहार दशा से रहित। अग्रह्यम्=पकड़ने योग्य नहीं। अलक्षणम्=जिसका लक्षण इंद्रियों से जाना नहीं जाता। अचिंत्यम्=मन की कल्पना शक्ति जिसकी सीमा को नहीं पा सकती।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अव्यपदेश्यम्=जो किसी नाम के कहने से ध्यान में नहीं आता। एकात्मा प्रत्ययसारं=जिसको एक आत्मा ही जानने का अधिकारी है। प्रपंचोपशम=बाहर पंच भौतिक ज्ञान से एक होकर। शांत=जो शांत अर्थात विक्षेप रहित है। शिवम्=जो कल्याणकारी और शरीर, मन और प्राणों के धर्म से रहित। अद्वैतं=अनुपम। चतुर्थ=चौथत। मन्यंते=विचार करते या मानते हैं। स आत्मा=वह जीवात्मा है। स=वह। विज्ञेयः=जानने योग्य है।

अर्थ--परमात्मा सब से सूक्ष्म है, इस कारण इसके भीतर कोई पदार्थ नहीं। अतः वह भीतर किसको देख सकता है, जिससे उसको भीतरी ज्ञान हो ? और परमात्मा के सर्वव्यापक होने से उससे कोई वस्तु बाहर नहीं, जिसको वह बाह्य ज्ञान के द्वारा देखे और बाहरी बुद्धि को प्राप्त करे। और जब उसके भीतर बाहर कुछ नहीं, तो दोनों ओर जाने वाली बुद्धि भी उसकी नहीं हो सकती। और न अंधेरे में केवल उसको अंधेरा ही दृष्टि पड़ता है, जिसको एक ही प्रकार का ज्ञान कहा जावे और न उसे नैमित्तिक ज्ञान होता है और न कोई वस्तु ऐसी है जिसको वह न जानता हो। क्योंकि उसको पूर्व सर्वज्ञ बता चुके हैं। अतः वह क्या है, जो इंद्रियों से नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाना जाता। नाम रूप के प्रत्यक्ष सम्बंध से उसमें व्यवहार दशा नहीं हो सकती। उसका कोई लक्षण ही ऐसा नहीं हो सकता जो इंद्रियों से प्रत्यक्ष हो सके। मन से कितना ही विचार किया जावे, उसके अनंत गुणों की सीमा नहीं। वह ऐसी आकृति नहीं कि जो केवल नाम लेने से ही उसका स्वरूप स्मरण हो जावे। उसको केवल जीवात्मा ही जान सकता है। जब कि इंद्रियों से अनुभव होने योग्य बाह्य वस्तुओं से मन को पृथक् करले और उपासना के द्वारा चंचल मन को शांत और स्थिर करे, वह कल्याणकारक क्षुधा, तृषा, शोक, मोह, बुढ़ापा, मौत से रहित और अनुभव है। जिसके समान कोई नहीं हुआ है, न होगा। उसको चतुर्थ पाद मानते हैं,वही इसके जीव के भीतर वास करनेवाला आत्मा है, वही जानने योग्य है। जो इसको नहीं जानता, वह अपने जन्म को नष्ट करता है।

प्रश्न—जब कि वेद ने यह बताया है कि जो मनुष्य सब भूतों को आत्मा के भीतर देखता है और सब के भीतर आत्मा को देखता है। इससे स्पष्ट विदित है कि सब आत्मा के भीतर हैं, तो उसको भीतर का ज्ञान आवश्यकीय है। और जब वह सब के भीतर है, तो सब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उससे बाहर हैं। इस कारण बाहर का ज्ञान भी अवश्य चाहिये। फिर श्रुति ने क्यों कहा कि वह भीतर बाहर के ज्ञान से रहित है ?

उत्तर—भीतर के कहने से आशय परमात्मा से सूक्ष्म कोई नहीं, जिसको भीतर जाकर देखने की आवश्यकता हो। जैसे जीव को भीतर जाकर परमात्मा के दर्शन की आवश्यकता है। और बाहर कहने से यह आशय है कि वह एक देशी नहीं, जिसको बाहर की वस्तुओं के देखने के लिये इंद्रियों की आवश्यकता हो। दूसरी बात यह है कि जीवात्मा को नैमित्तिक ज्ञान होता है, परमात्मा को न भीतर का न बाहर का ही नैमित्तिक ज्ञान होता है।

प्रश्न—जबकि ब्रह्म अदृश्य अर्थात् देखने योग्य नहीं, तो बृहदारण्यकोपनिषद् में क्यों लिखा है कि—हे मैत्रेयि ! आत्मा ही देखने सुनने योग्य और मनन करने योग्य है।

उत्तर—आत्मा इंद्रियों से अनुभव नहीं होता, इस कारण अदृष्ट कहा है। परंतु मन से उसका प्रत्यक्ष होता है। इस कारण देखने योग्य कहा है। केवल थोड़ा सा विचार करने से विदित होता है कि दोनों श्रुतियों में विरोध नहीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाना जाता। नाम रूप के प्रत्यक्ष सम्बंध से उसमें व्यवहार दशा नहीं हो सकती। उसका कोई लक्षण ही ऐसा नहीं हो सकता जो इंद्रियों से प्रत्यक्ष हो सके। मन से कितना ही विचार किया जावे, उसके अनंत गुणों की सीमा नहीं। वह ऐसी आकृति नहीं कि जो केवल नाम लेने से ही उसका स्वरूप स्मरण हो जावे। उसको केवल जीवात्मा ही जान सकता है। जब कि इंद्रियों से अनुभव होने योग्य बाह्य वस्तुओं से मन को पृथक् करले और उपासना के द्वारा चंचल मन को शांत और स्थिर करे, वह कल्याणकारक क्षुधा, तृषा, शोक, मोह, बुढ़ापा, मौत से रहित और अनुभव है। जिसके समान कोई नहीं हुआ है, न होगा। उसको चतुर्थ पाद मानते हैं,वही इसके जीव के भीतर वास करनेवाला आत्मा है, वही जानने योग्य है। जो इसको नहीं जानता, वह अपने जन्म को नष्ट करता है।

प्रश्न—जब कि वेद ने यह बताया है कि जो मनुष्य सब भूतों को आत्मा के भीतर देखता है और सब के भीतर आत्मा को देखता है। इससे स्पष्ट विदित है कि सब आत्मा के भीतर हैं, तो उसको भीतर का ज्ञान आवश्यकीय है। और जब वह सब के भीतर है, तो सब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उससे बाहर हैं। इस कारण बाहर का ज्ञान भी अवश्य चाहिये। फिर श्रुति ने क्यों कहा कि वह भीतर बाहर के ज्ञान से रहित है ?

उत्तर—भीतर के कहने से आशय परमात्मा से सूक्ष्म कोई नहीं, जिसको भीतर जाकर देखने की आवश्यकता हो। जैसे जीव को भीतर जाकर परमात्मा के दर्शन की आवश्यकता है। और बाहर कहने से यह आशय है कि वह एक देशी नहीं, जिसको बाहर की वस्तुओं के देखने के लिये इंद्रियों की आवश्यकता हो। दूसरी बात यह है कि जीवात्मा को नैमित्तिक ज्ञान होता है, परमात्मा को न भीतर का न बाहर का ही नैमित्तिक ज्ञान होता है।

प्रश्न—जबकि ब्रह्म अदृश्य अर्थात् देखने योग्य नहीं, तो बृहदारण्यकोपनिषद् में क्यों लिखा है कि—हे मैत्रेयि ! आत्मा ही देखने सुनने योग्य और मनन करने योग्य है।

उत्तर—आत्मा इंद्रियों से अनुभव नहीं होता, इस कारण अदृष्ट कहा है। परंतु मन से उसका प्रत्यक्ष होता है। इस कारण देखने योग्य कहा है। केवल थोड़ा सा विचार करने से विदित होता है कि दोनों श्रुतियों में विरोध नहीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न—परंतु उपनिषद् में बताया है कि वह मन से चेतन नहीं किया जाता फिर उसका मन से प्रत्यक्ष मानना भी युक्ति से ठीक नहीं मालूम होता। क्योंकि श्रुति इसका खण्डन करती है।

उत्तर—कठोपनिषद् की श्रुति में स्पष्ट शब्दों म लिखा है कि वह परमात्मा मन ही से जाना जाता है। वास्तव में मन की दो दशाएँ हैं। एक मल बिक्षेप और आवरण दोष से रहित मन। दूसरे इन दोषों से युक्त मन जो श्रुति कहती है कि परमात्मा मन से नहीं जाना जाता, उसका आशय मल विक्षेप और आवरण दोष युक्त मन से है। और जो श्रुति कहती है कि परमात्मा मन से जाना जाता है, उसका आशय मल विक्षेप आवरण दोष से रहित मन से है। यदि परमात्मा का ज्ञान किसी भांति न हो, तो उसकी सत्ता ही किस प्रकार स्वीकार की जावे।

प्रश्न—मल दोष किसे कहते हैं।

उत्तर—मन में जो दूसरों को हानि पहुंचाने का विचार है यही मल दोष है। जब तक यह दोष बना हुआ है, तब तक मन परमात्मा को जानने में साधन नहीं हो सकता। यथा दर्पण से नेत्र और उसके भीतर रहने वाले

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुरमा (अञ्जन) का दर्शन होता है। परन्तु मैला दर्पण नेत्र और सुरमा का दर्शन नहीं करा सकता। इस कारण नेत्र और सुरमा को देखने वाले प्रथम दर्पण को शुद्ध करते हैं, जब तक दर्पण शुद्ध न हो, तब तक किस प्रकार उससे ज्ञान हो सकता है। वह मनुष्य मूर्ख है, जो मन को शुद्ध किये बिना जीवात्मा और परमात्मा के देखने की इच्छा रखता है। और वह गुरु कपटी है, जो परमात्मा को दिखाने के लिये अतिरिक्त मन के दोषों के दूर करने के, अन्य साधन बताता है।

प्रश्न—विक्षेप दोष किसे कहते हैं।

उत्तर—मन की चंचलता का नाम विक्षेप दोष है। मन इस वेग से संकल्प विकल्प करता है कि इसका चलना (गति) विद्युत से भी अधिक है। यदि इस भांति वेग से गति करनेवाले दर्पण से, कोई नेत्र और उसके भीतर रहने वाले सुरमा का दर्शन करना चाहे, तो क्योंकर सफल हो सकता है।

प्रश्न—आवरण दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर—यदि दर्पण पर एक कागज (पत्र) पड़ा हो, तो, इस में नेत्र और नेत्र के भीतर रहने वाले सुरमा का दर्शन नहीं हो सकता। अतः जब तक दोष दूर न हों, तब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तक आत्मा और परमात्मा का जानना कठिन है।

प्रश्न—क्या इन तीन दोषों के अतिरिक्त परमात्मा के जानने में और भी कोई बाधा है ?

उत्तर—यदि दर्पण शुद्ध हो, परन्तु मकान अंधेरा हो, तो भी नेत्र और सुरमा का ज्ञान नहीं हो सकता। इस कारण सब से बड़ा दोष जिससे हम जीवात्मा और परमात्मा को नहीं जान सकते; वह अविद्यांधकार है। जब तक अविद्या रहेगी, कोई भी जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप को नहीं जान सकता।

प्रश्न—इन दोषों के दूर करने का उपाय क्या है ? जिस से परमात्मा के जानने योग्य बन सके ?

उत्तर—अन्धकार को दूर करने का उपाय ब्रह्मचर्याश्रम के द्वारा वेद वेदाङ्ग और उपाङ्ग को यथावत् पढ़ना। फिर वेद के बताये हुये निष्काम कर्म से मन के मल दोष को दूर करना। जिस प्रकार से मन में अन्य को हानि पहुंचाने का विचार हुआ था, उस के स्थान में दूसरों के साथ परोपकार का विचार नियत करना। जिस के वास्ते गृहस्थाश्रम बनाया गया। फिर विक्षेप दोष को दूर करने करने के लिये वानप्रस्थाश्रम करके अष्टाङ्ग योगके अभ्यास अथवा वैराग्य द्वारा मन की चंचलता को दूर करना।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अतिरिक्त वैराग्य और अभ्यास के अन्य कोई साधन मन को स्थिर करने का नहीं। पुनः सन्यासाश्रम के द्वारा मन के ऊपर जो अहंकार का परदा पड़ा हुआ है, इस को दूर करना। अतएव इन चारों आश्रमों का नियमपूर्वक पालन करना ही परमात्मा को जानने का सन्मार्ग है। इस के विरुद्ध चलने वालों को कभी ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

मन्त्र—सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रंपादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ॥८॥

शब्दार्थ—सः=इसलिये। अयमात्मा=यह जीव के भीतर बास करनेवाला आत्मा। अक्षरम्=नाश रहित। ओङ्कारः=ओ३म् है। अधिमात्र=मात्रा इनसे बताया गया। पादः=पाद अर्थात् भागों से विभाजित कर के। मात्रा=मात्रा से विभाग कर के। मात्राश्च=मात्रा में। पादा=पाद्य है। अकार=अकार। उकार=उकार। मकार=मकार।

अर्थ—सो यह आत्मा जो विनाश रहित और जीव के भीतर बास करने वाला है। वह पाद और मात्रा के विभाग से विभाजित करके अकार, उकार, मकार के शब्द से प्रकाशित किया गया है। जिस से समझने वालों को सरलता से परमात्मा का ज्ञान हो सके। समस्त संसार में जानने के योग्य चार ही वस्तु हैं, जो चार पाद कहलाते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हैं तीन प्रकृति के गुण और एक तीनों से पृथक् । चार आश्रम, चार वर्ण, चार वेद, चार अवस्था जानने के चार साधन हैं । किन्तु ब्रह्म चार ही से जाना जाता है, इस कारण ओ३म् अक्षर में तीन पाद तो चेतन जीवात्मा के, जो प्रकृति के गुणों को अल्पज्ञता से भोगता है; दिखाकर चौथे में उस जीव के भीतर रहने वाले परमात्मा को प्रकट किया ।

मन्त्र—जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राप्तेरादिमत्त्वाद्वाप्नोति हवै सर्वान् कामाना-दिश्च भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—जागरितस्थानः=जाग्रत दशा का अभिमानी जीव में व्यापक । वैश्वानरः=वैश्वानर नाम वाला । अकार=अकार । प्रथमा=प्रथम मात्रा है । मात्रा=सर्व अक्षरों में व्यापक होने से । आप्तेः=पाना । आदिमत्त्वात्=सब अक्षरों में पहिला होने से । आप्नोति=प्राप्त होता है । हव=निश्चय करके । सर्वान् कामान्=सम्पूर्ण इच्छाओं का आदि कारण । च=भी । भवति=होता है । यः=जो । एवं=इस प्रकार । वेद=जानता है ।

अर्थ—ओंकार की प्रथम जो मात्रा अर्थात् अक्षर अकार है, उसका नाम वैश्वानर है । क्योंकि जिस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अकार सब अक्षरों में व्यापक है, बिना अकार के किसी अक्षर को बोल नहीं सकते। ऐसे ही परमात्मा जो वैश्वानर है, वह सब पदार्थों के भीतर व्यापक है। बिना उसकी सत्ता के संसार के भीतर कोई नियम स्थित नहीं हो सकता। दूसरे सम्पूर्ण अक्षरों में अकार प्रथम है। इसी प्रकार सृष्टि के सर्व कारणों में परमात्मा प्रथम कारण है। अर्थात् कर्ता है। बिना कर्ता के कोई कारण कार्य में प्रवृत्त नहीं हो सकता। अर्थात् मिट्टी कभी अपने आप घड़ा नहीं बन सकती। लोहे से बिना कर्ता के घड़ी नहीं बन सकती। जो मनुष्य बिना कर्ता के जगत् की उत्पत्ति मानते हैं, उन के पास दृष्टान्त के लिये कोई शब्द नहीं।

प्रश्न—जगत् अनादि है, उसका कोई आदि नहीं और न अकार सब में व्यापक है।

उत्तर—जो वस्तु विकार वाली हो वह अनादि कैसे हो सकती है। जगत् के पदार्थों में षट्विकार अर्थात् १ उत्पन्न होना, २ बढ़ना, ३ एक सीमा तक बढ़कर रुक जाना, ४ रूप बदलना, ५ घटना, ६ नाश होना पाये जाते हैं। जब कि जगत् का प्रत्येक पदार्थ विकार युक्त है, तो उसका योग विकार से शून्य कैसे हो सकता है? जब सम्पूर्ण योग के परमाणु विकार युक्त हों, तो वह विकार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रहित कैसे हो सकते हैं। अतः जगत् विकार वाला होने से अनादि कभी नहीं हो सकता। और आदि कहते हैं कारण को, अतएव जो उत्पन्न है, उसका कारण अवश्य है। और किसी व्यञ्जन का उच्चारण बिना अकार के नहीं हो सकता।

प्रश्न—जब कि एकार, उकार का उच्चारण बिना अकार के होता है, तो किस प्रकार कहा जावे कि अकार के विना किसी का उच्चारण नहीं हो सकता ?

उत्तर—एकार और उकार दो स्वर इस कारण पृथक् हैं कि जीव और प्रकृति वह जो ब्रह्म की सम्पत्ति तथा प्रजा हैं, वह नित्य हैं। इस कारण तीन स्वर जो नित्य हैं अर्थात् अकार, ब्रह्म और उकार जीव और एकार प्रकृति। शेष सब स्वर और व्यंजन यौगिक हैं। स्वर की परिभाषा ही (लक्षण) यह है कि जो अपने आप हो जिसका कोई कारण न हो। अतः जीव की तीन अवस्थाओं म ब्रह्म उसके भीतर विराजमान होता है। इस कारण तीन पाद और मात्राएँ जीव को दिखा, चौथा पाद और मात्रा ब्रह्म है। जीव के भीतर कोई नहीं, वह सब से सूक्ष्म और सब से महान सब के भीतर रह कर उनका प्रबंधक है। जब तक जीव उसको न जाने, तब तक उसको यथार्थ शान्ति नहीं मिल सकती।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न—जब कि जीव, प्रकृति और ब्रह्म तीनों नित्य हैं, तो अकेले ब्रह्म को सब के भीतर मानना और प्रकृति न मानना ठीक नहीं हो सकता ?

उत्तर—जिस प्रकार अकार के बिना तो किसी व्यंजन का उच्चारण नहीं हो सकता। क्या एकार उकार की भी यही दशा है ? कदापि नहीं। इस दृष्टान्त से बताया गया है कि ब्रह्म के बिना तो वस्तु स्थित नहीं रह सकती। परंतु ऐसे पदार्थ जिनके भीतर जीव नहीं, जिस से जगत् दो प्रकार का कहाता है। एक जड़, दूसरे चेतन अथवा स्थावर, जंगम, चराचर इत्यादि।

प्रश्न—भला जीव के होने न होने से तो जड़ चेतन का भेद किया, परन्तु प्रकृति को तो सब के भीतर मानना ही पड़ेगा। फिर अकेले ब्रह्म ही को क्यों व्यापक कहा ?

उत्तर—सूक्ष्म वस्तु के भीतर स्थूल वस्तु नहीं जा सकती, परंतु स्थूल के भीतर सूक्ष्म जा सकती है। अतः प्रकृति स्थूल है इसके भीतर जीव और ब्रह्म रह सकते हैं, परंतु जीव, ब्रह्म के भीतर प्रकृति नहीं व्यापक हो सकती। अतः अकेला ब्रह्म ही व्यापक हो सकता है। जीव एक देशी होने से व्यापक नहीं हो सकता और प्रकृति स्थूल होने से।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मन्त्र—स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति हवै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति नास्याऽब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद ॥ १० ॥

शब्दार्थ—स्वप्नस्थानः=स्वप्न की दशा जिस स्थान में है। तैजसः=तैजस नाम । उकार=द्वितीय मात्रा है। उत्कर्षाद्=महान होने से। उभयत्वाद्=दोनों के बीच होने से अथवा दोनों के साथ सम्बंध होने से। उत्कर्षति= महत्ता को प्राप्त करता है। ज्ञानसन्ततिम्=ज्ञान से उत्पादक फल को प्राप्त होता है। समानश्च=जो न कभी दुखी न सुखी, न मित्र न शत्रु सब को समान होता है । न= नहीं। अस्य=इसके कुल। अब्रह्मविद्=ब्रह्म को न जानने वाला। भवति=होता है। यः=जो । एवं=इस प्रकार । वेद जानता है।

अर्थ—द्वितीय पाद अर्थात् तैजस को द्वितीय मात्रा उकार से अनुकूल करके दिखाते हैं। स्वप्न दोनों दशाओं के मध्य में होता है। जागृत और निद्रा की मध्यम दशा का नाम स्वप्न होता है, इस कारण वह दोनों के मध्य में होता है। और वह जागृत से उत्तम होता है । क्योंकि जागृत की अवस्था में तो विषयों के संस्कार बढ़ते हैं और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्वप्न में उसकी उन्नति रुक जाती है। यहां उकार से आशय जीवात्मा का है, जो संसार में नैमित्तिक ज्ञान को प्राप्त करता है, जो प्रकृति से उत्तम है, क्योंकि प्रकृति में ज्ञान नहीं और जीवात्मा ज्ञान को प्राप्त करके उससे प्राप्त होने वाले आनंद को प्राप्त करता है। और ब्रह्म प्रकृति के मध्य है और ब्रह्म की भांति ज्ञान स्वरूप नहीं। जिसको वाह्य ज्ञान की आवश्यकता ही न हो अथवा जिसका नियम उन्नति न कर सके और प्रकृति की भांति ज्ञान से शून्य हो, वह अल्पज्ञ है। यदि वह प्रकृति के साथ सम्बंध करे तो मिथ्या ज्ञानी होकर अज्ञान स्वरूप प्रकृति के धर्म दुःख को ग्रहण कर लेता है। प्रकृति दुःख स्वरूप है, जीव उसके संग से दुःख को प्राप्त होता है। जैसाकि जागृत अवस्था में मालूम होता है। जागृत अवस्था में सम्पूर्ण इंद्रियां प्रकृति के विषयों के साथ में सम्बंध रखती हैं, जिससे सब प्रकार के दुःख ईर्षा द्वेष, काम, क्रोध लोभ, मोह इत्यादि प्राप्त होते हैं। मानों जागृत अवस्था प्रकृति के साथ सम्बंध उत्पन्न करती है। स्वप्न जागृत से ऐसः ही उत्तम है, जैसे प्रकृति से जीव। जागृत में प्रकृति के संस्कार बढ़ते हैं, स्वप्न में नहीं। सुषुप्ति में जीव का ब्रह्म से सम्बंध होता है और जागृत में प्रकृति से; स्वप्न दोनों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के मध्य में है। जैसे ब्रह्म ज्ञान-स्वरूप और प्रकृति अज्ञान-स्वरूप है। परंतु जीव न तो ज्ञान-स्वरूप है, न अज्ञान-स्वरूप है। थोड़ा ज्ञान है, शेष वस्तुओं का सीमाबद्ध होने से अज्ञान रहता है। जितनी वस्तुओं का इंद्रियों के द्वारा मन में ज्ञान होता है। जितने शब्द सुने हैं, जितने रूप देखे हैं, जितनी वस्तुओं का रस चक्खा है, जितनी गन्ध सूंघी है, जितना स्पर्श किया है इन सब का संस्कार मन में रहता है; उसकी स्मृति होती है, उसको स्वप्न में देखता है। शेष सम्पूर्ण वस्तुओं से अज्ञानी रहता है।

जब जीवात्मा परमात्मा के साथ सम्बन्ध करता है, तो उसका बाह्य ज्ञान अल्प होता है और सुख की वृद्धि होती है। जब प्रकृति के साथ सम्बन्ध करता है तो उस का बाह्य ज्ञान बढ़ता है और सुख घटता है। जागृत अवस्था में प्राकृतिक सम्बन्ध होता है और स्वप्न अवस्था में परमात्मा से। और स्वप्न अवस्था दोनों के मध्य है, इस कारण जागृत अवस्था से उत्तम और दोनों के मध्य रहने वाली है। जो इस बात को ठीक प्रकार से जानता है, उसके कुटुम्ब में ब्रह्मज्ञानी उत्पन्न होते हैं। कोई ब्रह्म का न जानने वाला उस कुल में नहीं होता।

मंत्र—सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मितेरपीतेर्वा । मिनोति हवा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—सुषुप्तस्थानः=सुषुप्त स्थान । प्राज्ञः=प्राज्ञ नाम वाला । मकारस्तृतीया मात्रा=मकार तृतीय मात्रा है । मितेः=अनुमान करने से । अपीतेर्वा=एक ही हो जाने से । मिनोति=अनुमान करता है । हवा=यथावत् । इदं सर्वम्=इस सब जगत् को । अपीतिश्च भवति=यह जगत का जो कारण है इस को प्राप्त होता है । यः=जो । एवं=इस प्रकार । वेद=जानता है ।

अर्थ—सोने की दशा में जीव का नाम प्राज्ञ होता है, इस के लिये मकार तृतीय मात्रा है । इसके बताने के लिये अनुकूलता का कारण क्या है ? इसके उत्तर में बताया गया है कि प्राज्ञ से विश्व और तैजस का अनुमान किया जाता है । द्वितीय, जिस प्रकार प्रथम अकार, उकार मकार के योग से ओ३म् एक हो जाता है । ऐसे प्राज्ञ अर्थात् सोने की दशा में सम्पूर्ण नैमित्तिक ज्ञान से अलग होकर, भीतर रहने वाले आत्मा में मन को लगा कर इस सारे जगत का ठीक ठीक अनुमान कर लेता है । क्योंकि जिस समय जागना था, उस समय बाहर से क्लेश भीतर आ रहे थे । जब स्वप्न की दशा में आ गया तब बाहर से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्लेश आने बंद हो गये; परन्तु आये हुए मौजूद रहे। परन्तु जब सुषुप्ति दशा में अणु बाहर से आने के अतिरिक्त भीतर के भी शेष न रहे, क्योंकि वह भी स्वरूप से पृथक् मन में आत्मभाव होने के कारण से थे। जब मन के साथ सम्बन्ध टूट गया अर्थात् इस में अहंकार न रहा, तब सर्व क्लेश दूर हो गये। इस से जीव को जगत् का अनुमान विदित हो गया, कि जब इन्द्रियों के विषयों से सम्बन्ध होता है तो मन बहुत फैल जाता है, जिससे दुःख ही दुःख प्रतीत होता है। मकान जल गया, मन दुःखी हो गया। धन नाश हो गया, मन दुखी हो गया। पुत्र मर गया, मन दुखी हो गया। कोई सम्बन्धी मर गया, मन दुखी हो गया। घोड़ा मर गया, मन दुखी हो गया। अपने शरीर के अतिरिक्त मैं इतनी बढ़ जाती है कि जिसकी सीमा नहीं रहती। और जितनी मैं उन्नति करती है, उतना ही दुःख वृद्धि पाता है। जागृत अवस्था में अहंकार अपने शरीर से बाहर की वस्तुओं का भी बना रहता है, परन्तु स्वप्न की दशा में अत्यन्त निर्बल हो जाता है, केवल इन्द्रियों के पदार्थों का सम्बंध मन में रह जाता है। इस कारण स्वप्न की दशा में जागृत अवस्था की अपेक्षा उत्तमता मानी गई है। परंतु जब सो जाते हैं, तो मैं न जगत के पदार्थों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में रहती है, न शरीर में, न सूक्ष्म शरीर में। जब इन में इन नाश वाली वस्तुओं में पृथक् हो गई, तो किस के नाश से दुख हो। इस समय केवल जीवात्मा के भीतर चली गई। जब मैं जीवात्मा के भीतर रहती है, तो इसका नाश हो नहीं सकता, जिससे कोई दुख हो सके। परंतु जीवात्मा का ज्ञान स्वाभाविक गुण है, जो बिना जाने रह नहीं सकता। जब बाहर का संबंध टूट गया, तो बाहर का ज्ञान तो बन्द हो गया, जिससे जीवात्मा को दुख न रहा। अब उसने भीतर देखना आरंभ किया; जहां एक ही आनन्द स्वरूप था। यदि दो होते, तो ज्ञान होता; एक में ज्ञान किस प्रकार हो सकता है। अतः आनन्द में जीव रहा, जिससे वह संपूर्ण दुख जो जागने में रहे थे, जाते रहे।

मंत्र—अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपंचोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार। आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद य एवं वेद ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—अमात्रः=जिसके लिये कोई मात्रा नहीं। चतुर्थः=चतुर्थ पाद। ऽव्यवहार्य=जिस पर कोई व्यवहार नहीं हो सकता। प्रपञ्चोपशमः=जहां पहुंच कर यह प्रपञ्च अर्थात ज्ञान दूर हो जाता है। शिवः=कल्याणकारी क्षुधा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तृषा, शोक, मोह और बुढ़ापे और मौत से रहित। अद्वैतम्=अनुपम। ओंकार=ओंकार है। आत्मा=जीवात्मा। एव=है। संविशति=व्याप्य होता। आत्मानम्=परमात्मा से। आत्मानं=आत्माको। एवं=इस प्रकार। वेद=जानता है। द्विर्वचन ग्रन्थ समाप्ति सूचक है।

अर्थ—यहां तक तो स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर के अभिमान से तीन पाद और तीन मात्रा ओ३म् से प्रकट करके अब इन तीनों शरीरों के अभिमानी जीवात्मा के भीतर जो व्यापक परमात्मा होता है, तो उसको उन अवस्थाओं से सम्बन्ध है, न कि इन तीन शरीरों से। और न क्षुधा, तृषा, शोक, मोह, जरा, मृत्यु का उस पर कोई प्रभाव है। जिस प्रकार जीव बहुत से हैं, परन्तु परमात्मा एक ही है। इस की कोई उपमा नहीं, वह जीव के भीतर भी व्यापक है। जो जीवात्मा को इस प्रकार जानता है, कि जब वह बाहर सम्बन्ध छोड़ कर, अपने भीतर परमात्मा को व्यापक देख कर, यह कहता है कि मुझ में जो व्यापक है, यह ब्रह्म है, यह आत्मा है, उस को कोई दुःख हो ही नहीं सकता। जिस प्रकार सूर्य के निकट जाने से अन्धकार स्वयम् भाग जाता है। ऐसे ही परमात्मा को अपने भीतर देखने से सब दोष दूर हो जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जो मनुष्य विचार से इस उपनिषद् को पढ़ते हैं, वह तो आत्मज्ञान को प्राप्त होते हैं। और जो मनुष्य अविचार से पढ़ते हैं वह मायावाद के जाल में ग्रसित हो जाते हैं। वेदांतदर्शन ऐसा उत्तम दर्शन है कि जिसको जानने वाला मनुष्य मनुष्यत्त्व की पदवी से आगे बढ़ जाता है। जो मनुष्य वेदांत को नहीं जानते, वह मनुष्यत्त्व से गिरे हुए हैं। क्योंकि जो मनुष्य यह नहीं जानता कि मैं क्या हूँ, उस से बढ़ कर संसार में मूर्ख कौन हो सकता है। सम्पूर्ण संसार के रोगों की चिकित्सा जानता हूं परन्तु अपने रोग से हिल नहीं सकता और इसकी चिकित्सा भी नहीं कर सकता। तो मेरी अन्य रोगोंकी चिकित्सा जानने से क्या लाभ है। क्योंकि मैं जब तक स्वयम् आरोग्य होकर इनकी बीमारी की चिकित्सा न करूं, तो मेरे ज्ञान से दूसरों को क्या लाभ पहुंच सकता है। वेदांतशास्त्र ही है जो जीव को अपने रूप का ज्ञान करा के सब प्रकार के दुःख और भय से मुक्त करा देता है। मायावादियों ने तो वेदांतशास्त्र को बदनाम कर रक्खा है। परञ्च वह वास्तव में ठीक नहीं। बहुत से मनुष्य यह कहते हैं कि वेदांती मनुष्य आलसी होता है और निकम्मा हो जाता है, परन्तु यह विचार केवल मूर्खों का है। वास्तव में वेदांती अपने स्वरूप को

४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जानता है, इस को निश्चय हो जाता है कि आत्मा नित्य है। कोई शक्ति ऐसी नहीं, जो आत्मा को हानि पहुंचा सके। कोई शस्त्र ऐसा नहीं, जो आत्मा को काट सके। कोई अग्नि ऐसी नहीं, जो आत्मा को जला सके। यदि संसार की सर्व शक्तियां एकत्रित हो जावें, तो भी आत्मा को कोई हानि नहीं हो सकती। क्षुधा, तृषा प्राणों के धर्म हैं। आत्मा प्राण नहीं, प्राण उत्पन्न तथा नाश होने वाले हैं, उनके धर्म से आत्मा को कोई दुःख नहीं। प्राण परमात्मा ने कर्मों का फल भोगने के लिये अवधि दी है, जिस की रक्षा परमात्मा का काम है। जब तक परमात्मा इसकी रक्षा करेगा, तब तक यह सुरक्षित रहेंगे। परमात्मा की आज्ञा होते ही कोई भी इनको स्थिर नहीं रख सकता। संसारके बड़े-बड़े राजाओं को एक मिनट में चलना होगा। कोई सेना तथा तोप, डायनामेन्ट के गोले और बंदूकें, गढ़ और खंदकें एक मिनट के लिये इस वारंट को जो प्राणों को लेने आया है, रोक नहीं सकतीं। संसार में अनगिनती राजा हुए, आज उन के शरीरों का कुछ भी चिह्न नहीं। जो उत्पन्न हुआ है, उसको नाश भी होना है। प्राण न उत्पन्न हुए हैं, न उनको नाश होना है। नाश से रहित का नाश वाले से क्या मेल? इस लिये प्राणों की रक्षा की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसको कोई चिंता नहीं। वह रोटी के लिये अपने धर्म को नहीं बेच सकता। वह जानता है कि मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं। एक पामर, दूसरे विषयी, तीसरे मुमुक्षु। जो मनुष्य पशुओं के शरीर से आते हैं, उन के भीतर पशुओं के संस्कार होते हैं। पशुओं को खाने के अतिरिक्त और कोई चिन्ता नहीं होती। उस को यह निश्चय नहीं होता कि जिस स्वामी ने मुझे खूंटे पर बांधा है, जिसको मुझ से काम लेना है, वह मुझ को अवश्य खाने को देगा। स्वामी खाना देने आता है, पशु रस्सा तुड़ाने के लिये दौड़ता है। जब तक चारह उसके सामने न आ जावे, इसको शान्ति नहीं होती। वह अपने साथियों से चारे के लिये लड़ता है। ऐसे ही जो मनुष्य पशु शरीर से आये हैं, जिनमें ज्ञान के संस्कार बहुत कम हैं, जो पुनर्जन्म के सिद्धान्त से अनभिज्ञ हैं, जो आत्मा की सत्ता से अनभिज्ञ हैं, जो परमात्मा के और इसके नामों से दूर हैं, जो कर्म और फल भोगने के विधान से अनभिज्ञ हैं वह पामर मनुष्य हैं; जिनके जीवन का उद्देश्य ही रोटी है। भारतवर्ष में आज भी लक्षों पामर मनुष्य हैं, जिनको धर्म कर्म का कुछ भी ज्ञान नहीं, जो केवल रोटी की खोज ही मुख्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समझते हैं। जिनके हृदय में यह बैठा हुआ है कि यदि हम अपने धर्म की ओर लग जावें, तो रोटी कहां से आवे। वह यह नहीं देखते कि जिस समय मनुष्य अति न्यून असत्य बोलते थे, जिस समय मनुष्य अंग्रेजी शिक्षा से शून्य थे, जिस समय मनुष्य अंग्रेजी विज्ञान से नितान्त अनभिज्ञ थे उस समय रोटी कैसी सरलता से प्राप्त होती थी। उस समय न तो ऐसे सूखा पड़ते थे और न रोग फैलते थे। जितनी अंग्रेजी शिक्षा बढ़ती जाती है, वैसे ही मनुष्य परमात्मा को भूल कर प्रकृति उपासक बन गये। जिसका परिणाम हर प्रकार के दुःख भोगना था। जब कि गवर्नमेन्ट के विरोधी आराम से नहीं सो सकते, उन को रात दिन पकड़ जाने का भय लगा रहता है। यद्यपि सरकार अल्पज्ञ है, वह विरोधियों के मन का वृत्तांत नहीं जान सकती, उसे गुप्त-भेदी द्वारा पता लगाने की आवश्यकता पड़ती है। इतनी कमजोरी पर भी विद्रोही पकड़े जाते हैं और दंड पाते हैं। इन दंडों को देकर विद्रोहियों के चित्त अशांत रहते हैं। फिर उस सर्व व्यापक, सर्व शक्तिमान परमात्मा के विद्रोही जिसके सर्वत्र होने से किसी गुप्त-भेद की आवश्यकता नहीं। जिसके दंड से झूठी साक्षी नहीं बचा सकती, कोई योग्य वकील भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कानून द्वारा मुक्त नहीं करा सकता। फिर उससे विरोध करके जो सुख चाहते हैं, वह निरे पशु ही कहलावेंगे। दूसरे प्रकार के मनुष्य विषयी कहलाते हैं, जो इन पशुओं से कुछ अधिक ज्ञान रखते हैं। वह प्रत्येक वस्तु को सुधार कर प्रयोग करना चाहते हैं। वह प्राकृतिक विज्ञान के प्रेमी और अपनी सत्ता से शून्य होते हैं। इनको भी न तो जीवात्मा की सत्ता का ज्ञान होता है और न परमात्मा की सत्ता का ज्ञान। और न इनको पुनर्जन्म पर कुछ विश्वास होता है और न वेद पर। इसलिये वह मनुष्य जीवन का उद्देश्य खाना पीना और विषयभोग ही समझते हैं। यह दोनों तो पुनर्जन्म के विश्वास न होने से वर्तमान जन्म के लिये प्रबंध करते हैं। वर्तमान जन्म का प्रबंध पशु भी करते हैं। खाना पीना और विषय भोगना भी पशुओं में पाया जाता है। यह अपने आपको पशुओं से आगे नहीं ले जा सकते। यह बार बार पशुओं के शरीर में जन्म लेते हैं। इनका जीवन बहुमूल्य जीवन नहीं होता। क्योंकि यह अपने जीवन को शरीर की गाड़ी को धोने और इंद्रियों के घोड़े चराने में व्यय करते हैं। वह जीवन जो गाड़ी को धोने और घोड़ों के चराने में खर्च हो, उत्तम पुरुष का जीवन नहीं हो सकता। क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गाड़ी का धोना घोड़ों का चराना साईस का काम है । साईस चाहे कितने ही अधिक हों, उन से देश की प्रतिष्ठा नहीं होती क्योंकि इनकी आत्मा बल से शून्य होती है, इनके हृदय में कभी बलवान साहस उत्पन्न नहीं होता । छोटे काम तथा छोटे विचार होते हैं । निर्बलता उनको आधीन रखती है । वेदांतशास्त्र के ज्ञाता तीसरे प्रकार के मनुष्य होते हैं, जिनको मुमुक्ष कहते हैं । इनके भी तीन भेद हैं । एक वह जिनके मन मैले थे, वह उसको शुद्ध करने के लिये निश दिन परोपकार में लगे रहते हैं । वह समस्त संसार की भलाई को ही अपना उद्देश्य समझते हैं । उनका वचन यह होता है कि अपने उत्साह को ऊंचा रख, ताकि ईश्वर और सृष्टि के समीप हो और तेरे उत्साह के अनुसार तेरा आदर हो । न तो उनको आराम की इच्छा, न धन की; यदि इच्छा है तो परोपकार की। वह संसार के कष्टों की कुछ परवाह नहीं करते । वह यश तथा अपयश को तुच्छ समझते हैं । वह मान अपमान से कोई स्वार्थ नहीं रखते । वह किसी दशा में भी जीव मात्र को हानि पहुंचाने का विचार नहीं करते । उनका विचार स्वतंत्र रहता है । ईश्वर की आज्ञा पर उन को संतोष होता है । वह जानते हैं कि परमात्मा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जो कुछ करता है, अच्छा ही करता है। उसने जो कुछ किया, अच्छा ही किया। वह जो कुछ करेगा, अच्छा ही करेगा। क्योंकि वह न्याय तथा दया के अतिरिक्त कुछ करता ही नहीं। यदि तुमको दुःख मिलता है; तो तुम्हारे कर्मों से। दयालु परमात्मा ने कोई वस्तु ऐसी नहीं बनाई जो जीवों को दुःख देने वाली हो। और न कोई वस्तु सुखदाता है; सुख दुःख का कारण निज कर्म हैं। यदि हम ज्ञान के अनुकूल कर्म करते हैं, तो सुख होता है। यदि ज्ञान के विरुद्ध करते हैं; तो दुःख होता है। ज्ञान हमको बताता है कि जिस प्रकार के बीज बोवेंगे, वैसा ही फल आवेगा। इसी प्रकार हम दूसरों के साथ जैसी वासना करते हैं, वैसा ही हमको फल मिलता है। जो मनुष्य दूसरों को हानि पहुँचाने का विचार करता है, उसके मन में पाप का बीज बोया गया। जिसका फल दुःख के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। वह दूसरों के दोष टटोलने पर नहीं रहता, न इस कर्म को उच्च विचार करता है। किन्तु किसी में कोई दोष दृष्टि पड़ता है, तो उसको किसी उपाय से दूर करना चाहता है। वह मधु मक्षिका की भांति पुष्पों से मधु निकालता है। वह जिससे मिलता है, उसके गुणों में से कोई न कोई गुण प्राप्त करता है। वह संसार में रहता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परन्तु सराय समझ कर संसार को अपना घर नहीं समझता उसका विचार इस दृष्टान्त पर रहता है।

दृष्टान्त—किसी राजा ने एक जड़ाऊ छड़ी बनवाई। जिस में लाखों रुपये के हीरा मोती लगा दिये। एक दिन राजा श्मशान के पास से होकर निकले, वहां एक पागल को देखा, राजा ने उससे कहा—तुम नगर में क्यों नहीं आते ? दीवाने ने उत्तर दिया—जो नगर में हैं, वह कहां जाते हैं। अन्त को वह भी यहां ही आते हैं। पागल की इस बात को सुन कर राजा ने छड़ी उसको देदी। पागल ने कहा—मैं इसको क्या करूं, यह मेरे किस काम की है। राजा ने कहा—इसे रक्खो, जब कोई तुम से अधिक उन्मत्त मिले, तो उसे दे देना। पागल ने वह छड़ी लेली कुछ समय के पश्चात् राजा की मृत्यु के दिन समीप आये। यह समाचार पागल को मिला। वह राजा के समीप आया और राजा से हाल पूछा। राजा ने कहा—अब हमारे अंतिम मार्ग का समय है। पागल ने पूछा—आप कहां जायँगे ? राजा ने कहा—यह तो मालूम नहीं। पागल ने कहा—जहां आप जायँगे कितनी सेना, रिसाला तोपें और पयादे साथ ले जायँगे। राजा ने कहा—तब ही तो तुझ को पागल कहते हैं। भला, इस अंतिम मार्ग में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहीं ऐसा सामान भी जाया करता है। दीवाने (पागल) ने फिर कहा—कितना कोष आप साथ ले जायँगे, क्योंकि इतने बड़े यात्रा के लिये जिसका पता ही न हो, बहुत व्यय की आवश्यकता पड़ेगी। राजा ने कहा—वास्तव में तू पागल है। भला, कहीं अंतिम यात्रा में कोष साथ जाया करता है। इस यात्रा में बिना धन के ही जाना पड़ता है। पागल ने कहा—अच्छा कौन-कौन से मंत्री आपके साथ जायँगे, क्योंकि बिना मंत्री के तो काम चल ही नहीं सकता। राजा ने कहा—तू बड़ा पागल है, कहीं इस अंतिम यात्रा में मंत्री साथ जाया करते हैं। पागल ने कहा—अच्छा कौन-कौन सी रानियां साथ जायंगी, क्योंकि बिना रानियों के यात्रा में अकेले आप का काम कैसे चलेगा? राजा ने कहा—तुझ से बढ़कर कौन मूर्ख होगा। क्या इस अंतिम यात्रा में रानियां साथ जाया करती हैं। पागल ने कहा—रानियां नहीं तो राजकुमार तो साथ जावेंगे, क्योंकि इनके बिना संतोष कैसे मिलेगा। राजा ने कहा—नहीं, इस यात्रा में राजकुमार भी न जा सकेंगे। पागल ने पूछा—तो फिर अकेले ही सही, परन्तु किस सवारी में आप जावेंगे? राजा ने कहा—अरे मूर्ख! इस यात्रा में सवारी भी साथ नहीं जा सकती। यह सुन कर पागल ने छड़ी राजा के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पास फैंकदी और कहा—मुझ से अधिक पागल तू है। सहस्रों मनुष्यों को दुःख देकर ऐसा सामान एकत्रित किया जिसको साथ नहीं ले जा सकता। तुझ से अधिक पागल कौन होगा राजा सुन कर पश्चात्ताप करने लगा।

जो मनुष्य अज्ञानी हैं, वह सांसारिक पदार्थों को नित्य समझ कर उनको एकत्रित करने में लगे रहते हैं। और ज्ञानी पुरुष जानता है कि जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह अवश्य नष्ट होती है। क्योंकि पैदा हुई वस्तु कभी नित्य नहीं हो सकती। अनित्य में नित्य बुद्धि इत्यादि अविद्या ही सब दुःखों का कारण है। जो मनुष्य विद्या के चक्कर में फँस जाते हैं, वह सदा दुख भोगते हैं। जो मनुष्य विद्या में काम करते हैं, वह सदा सुख भोगते हैं। उत्पत्तिशील वस्तु कभी नित्य नहीं हो सकती। करोड़ों राजा हुए, परन्तु उन के अस्तित्व का कोई चिह्न संसार में दृष्टि नहीं आता। असंख्य धनी सम्पत्ति खोकर कंगाल बनते हैं। सहस्रों धनी पुरुषों के घर चोर डाकू लूट लेते हैं। सैंकड़ों बैंक दिवाला निकाल बैठे। सहस्रों जिमींदारों की जिमींदारियां बिक गईं। कोटि युवा बलवान् योद्धा मिट्टी में मिल राख की ढेरी बन गये। भीम और अर्जुनकी अस्थियों के चिह्न भी नहीं मिलते। राम, कृष्ण के शुभ कर्मों के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अतिरिक्त उनके प्राकृतिक शरीर का कुछ भी पता नहीं। अतएव मुमुक्षु का यही विचार है कि जिस प्रकार हो सके संसार का निष्काम परोपकार करूं, जिस से अन्तःकरण की शुद्धि हो जावे। जब अन्तःकरण शुद्ध हो जावे, तो तीन प्रकार की वासनायें अर्थात् वित्तेषणा, पुत्रेषणा, लोकेषणा (धन की इच्छा, पुत्र की इच्छा, यश की इच्छा) दूर हो जाती है। जिसको यह इच्छाएँ प्रस्तुत हैं, उस का मन शुद्ध नहीं। वह परोपकार के काम यदि करता है, तो लोकेषणा अर्थात् यश प्रतिष्ठा तथा प्रभुत्त्व के कारण से करता है। परन्तु यह सब धर्म से गिरा कर पाप के गढ़े में गिराते हैं। इंद्र जैसे देवराज को भी यश की इच्छा ने धर्म से पतित कर दिया। कोई यश का इच्छुक यह नहीं चाहता कि उस जैसे दो हो जावें। धर्म के विचार के लक्षों मनुष्य मिलकर काम कर सकते हैं, परंतु यश और प्रतिष्ठा तथा हुकूमत के विचार के दो मनुष्य भी एक में नहीं समा सकते। जैसा कवि कहता है, जिसका भावार्थ यह है—१० साधु १ गुदड़ी में समा सकते हैं, परंतु दो बादशाह १ देश में नहीं समा सकते।

जब तक मनुष्य के मन में परोपकार का विचार रहता है, तब तक उसका किसी से विग्रह तथा झगड़ा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नहीं होता। जहां स्वार्थ आवे, वहां लड़ाई झगड़े आरम्भ हो जाते हैं। जब तक विद्या रहती है, लड़ाई झगड़े नहीं होते। परन्तु अविद्या महारानी का पांव जहां पड़ा, वहा सब फूट मरते हैं। द्वितीय कक्षा के मुमुक्षुवत् हैं जिन का मन शुद्ध हो चुका है, जो केवल मन की चंचलता को दूर करने के लिये अभ्यास और वैराग्य को काम में लाते हैं। मन बिना वैराग्य और अभ्यास के स्थिर नहीं हो सकता। योगी जन अभ्यास के द्वारा मन को पकड़ते हैं। मन रक्त की गति से गति (हरकत) करता है। यदि रक्त में गति न हो, तो मन नहीं गति कर सकता। रक्त प्राणों की गति से क्रियावान होता है, यदि यह प्राणों की हरकत न हो, तो रक्त गति नहीं कर सकता अतएव जब प्राण-गति अधिकार में आ जाये तो रक्त की गति वशमें हो जावेगी। जब रक्तकी गति वश में हो जावेगी, तब चंचल मन भी वश में हो जावेगा। इस प्राण की गति को वश में करने के लिये महर्षि पातञ्जलि ने योगदर्शन में यम नियम इत्यादि योग के अष्टाङ्ग नियत किये हैं। उन अंगों पर ठीक प्रकार अनुष्ठान करने का नाम अष्टाङ्ग योग का अभ्यास कहाता है। इस मार्ग पर चलने वाला मनुष्य यदि सिद्धियों के जाल में न फँस जावे, तो मुक्ति को प्राप्त होता है। उसके मार्ग

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की सम्पूर्ण बाधा स्थिर चित होकर अभ्यास करने से दूर हो जाती हैं परंतु द्वितीय साधन मन को वश में लाने का वैराग्य है। राग अर्थात् वासना उस वस्तु की होती है जिसको आत्मा अपने लिये सुलभ अप्राप्त समझता है। न तो उस वस्तु की इच्छा होती है जो लाभदायक न हो और न उस वस्तु की इच्छा होती है, जो प्राप्त हो। और जो वस्तु प्राप्त तथा हानिप्रद हो, उसमें द्वेष होता है। अब उपयोगी वह वस्तु होती है, जो न्यूनता को पूरा करे अथवा दोष को दूर करे। जब तक जीवात्मा अविद्या से अपने को शरीर समझता है, तब तक जो वस्तु शरीर की त्रुटि को पूरा करती है, भोजनादि अथवा शरीर के दोष को दूर करती है, यथा घृत औषधि इत्यादि। तब उसको इनमें राग होता है। यदि सवारी को शरीरार्थ उपयोगी विचार करता है, तो उसमें राग होता है। तात्पर्य यह जितने पदार्थों में अपने होने का अभ्यास होता है, उन सब के लिए उपयोगी में राग होता है। जब जीव को पता लग जाता है कि मैं न तो शरीर हूं और न इंद्रियां, किंतु यह मेरे मार्ग में ले जाने के लिये गाड़ी तथा घोड़े हैं। इनकी सेवा में लगे रहना साईसी है। यदि यह अपनी गाड़ी होती, तो इसकी रक्षा की भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आवश्यकता होती। यह तो किराये की गाड़ी है, जिस का स्वामी हर समय किराया मांगता है। यदि थोड़ी देर के लिये वायु न मिले, तो भीतर से शब्द आता है-निकलो बाहर। यदि २४ घण्टे तक पानी न मिले, तो शब्द आता है-निकलो बाहर। यदि चार पांच दिवस भोजन न मिले, तो आज्ञा मिलती है-निकलो बाहर। भला ऐसे किरायेदार की गाड़ी में जिसका स्वामी क्षण क्षण में किराया मांगता हो, स्वस्थ होकर बैठना बुद्धिमानी का काम नहीं है। नहीं, इस गाड़ी से तो जितना मार्ग की ओर चला जावे, उतना ही लाभ है; गाड़ी और घोड़ों के चराने में अधिक समय व्यय करना अविद्या है। गाड़ी की रक्षा गाड़ी का स्वामी स्वयम् करेगा यात्री को तो जितनी यात्रा पूर्ण हो जावे, उतना ही लाभ है। जिस मनुष्य को शरीर और आत्मा का पता लग जावे, वह उस शरीर से लाभ उठा सकता है। जिसको आत्मज्ञान नहीं, वह शरीर की आवश्यकताओं में राग उत्पन्न करके अपने आपको बिगाड़ देता है। यदि आवश्यकताओं तक ही इतिश्री होती, तो कोई हानि नहीं थी। क्योंकि परमात्मा प्रत्येक आवश्यकता पूर्ण करते हैं। परंतु शरीर को आत्मा समझने वाला तृष्णा-रूपी रोग का शिकार हो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाता है। जो परमात्मा सम्पूर्ण संसार की आवश्यकताएं पूर्ण करता है, वह एक मनुष्य की भी तृष्णा पूर्ण नहीं कर सकता। क्योंकि जितना मिलता जावे, तृष्णा उससे अधिक बढ़ती जाती है। जिसका कारण यह है कि संसार के पदार्थों में आनंद तो है नहीं। जो इनमें आनंद की इच्छा से काम करता है उसे और मनुष्यों को (जो उससे सांसारिक पदार्थों में अधिक हैं) देखकर विचार उत्पन्न होता है कि इनको आनंद होगा। इसलिये वह उन पदार्थों को प्राप्त करता है। और सांसारिक वस्तुओं में आनंद नहीं है, इस कारण पादार्थों के प्राप्त करने से भी आनंद प्राप्त नहीं होता। फिर वह उससे अधिक में आनंद समझ कर उसकी इच्छा करता है। फल यह होता है, सम्पूर्ण संसार का चक्रवर्त्ती राज्य प्राप्त होने पर भी दुःख बढ़ जाता है, आनंद प्राप्त नहीं होता, परंतु तृष्णा नित्यप्रति कष्ट देती है। इस कारण जब तक विद्या न हो, जब तक प्रकृति के मूल तत्त्व से मनुष्य का वास्तविक परिचय न हो, जब तक प्रत्येक वस्तु आत्मा के लिये बन्धन न समझ ली जावे, क्योंकि वस्तुओं का अहङ्कारी बन्धन है, उसी से सम्पूर्ण दुःख उत्पन्न होते हैं। जिस वस्तु को हम अपना समझते हैं, उसी के नाश

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होने से दुःख होता है। जिसको हम अपना नहीं समझते उसके नाश से भी दुःख नहीं होता। यदि हम उसको अपना शत्रु समझते हैं, तो उसके नाश से भी हमको प्रसन्नता प्राप्त होती है। यदि हमारा भवन भस्म हो जावे, तो हमको कष्ट होता है। यदि वह भवन बेच दिया हो, तो उस के नाशसे कोई प्रसन्नता नहीं होती। यदि किसी हमारे शत्रु का मकान हो, तो उसके नाश से प्रसन्नता होती है। एक ही मकान बुद्धि भेद से दुःख, उदासीनता और सुख का कारण होता है। अतएव यह नाश वाला संसार है, इसकी प्रत्येक वस्तु विकार वाली पाई जाती है। उत्पन्न होना, बढ़ना, एक सीमा तक बढ़कर रुक जाना, आकृति में परिवर्तन करना, क्षय को प्राप्त होना तथा नष्ट होना, प्रत्येक शरीर, वृक्ष और वस्तुओं में देखा जाता है। जितना विनाश युक्त वस्तुओं में अहङ्कार होगा, उतना ही दुःख अधिक होगा। जितना इन अनित्य वस्तुओं से सम्बन्ध न्यून होगा, उतना ही दुःख भी न्यून होगा। अज्ञानी समझते हैं कि धनवानों को सुख अधिक होता है। परन्तु यह सत्य नहीं, जितनी सम्पत्ति अधिक होती है, उतना उसका चित्त कङ्गाल होता है। इसके सम्बन्ध में एक दृष्टान्त है।

दृष्टान्त—एक बार एक राजा नगर से पर्वतों पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मृगया के हेतु गया। मार्ग में बूंदें पड़ने लगीं। राजा घर की ओर लौटा मार्ग में देखा कि एक साधु बैठा हुआ है, न तो कोई उस पर वस्त्र है, न पात्र, न कोई भोजन की सामिग्री है, न कोई खाट है न झोपड़ी। राजा इस साधु की दशा को देख कर चित्त में विचार करने लगा कि मैं कैसा अयोग्य राजा हूं जिसके राज्य में ऐसे कङ्गाल मनुष्य रहते हैं। यह सोच कर राजा ने २५) एक सेवक द्वारा साधु के पास भेजे। साधु ने उत्तर दिया—किसी दीन को देदो। नौकर ने आकर राजा से कहा कि रुपया कम है इस कारण नहीं लिया। राजा ने ५००) रु० साधु के पास भेजा, तो भी उसने उत्तर दिया—किसी दीन को देदो। जब नौकर ने आकर कहा, तो राजा ने कहा अब भी थोड़े हैं। अतः पांचसहस्र रुपया साधु के समीप भेजे। उसने फिर उत्तर दिया—किसी दीन को देदो। राजा ने सुन कर फिर थोड़े समझ कर पचीस सहस्र भेजे। साधु ने उत्तर दिया—किसी दीन को देदो। अंतिम सवा-लक्ष लेकर राजा स्वयम् गये। साधु ने फिर वही उत्तर दिया—किसी दीन को देदो। राजा ने कहा—स्वामिन्! आप से बढ़ कर दीन कौन होगा? न तो आप के पास कपड़ा है न झोपड़ी, न पात्र हैं, न भोजन की सामिग्री। साधु ने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहा—हम तो राजा हैं। राजा ने सुन कर कहा राजाओं के पास तो सेना होती है, आप की सेना कहां है। साधु ने कहा—उनको भय होता है, इस कारण वह सेना रखते हैं हम को भय किसका है ? जिसके लिये सेना रक्खें। राजा ने कहा—राजाओं के पास कोष होता है, तुम्हारा कोष कहां है ? साधु ने कहा—राजाओं को भय के रोग के कारण व्यय होता है। इस कारण वह कोष रखते हैं। न हमको भय का रोग है, न सेना की आवश्यकता है, न हमारा कोई व्यय है, फिर हम कोष क्यों रक्खें ? राजा ने कहा आप के समीप राज-सामिग्री ही क्या है। साधु ने कहा—हमारे समीप रसायन है, जिस समय चाहें इन सम्पूर्ण पर्वतों के ताम्र को सुवर्ण बना दें। यह उत्तर श्रवण कर राजा चल दिये और मन में विचार किया कि यदि यह साधु रसायनी न होता, तो अवश्य इतना प्रभूत धन ले लेता। इसका रुपया न ले लेना, इस बात का प्रमाण है कि अवश्य रसायनी है। राजा रात्रि को सोने लगे तो विचार आया कि यदि इस रसायन कर्ता साधु से दश पांच सहस्र मन सुवर्ण बनवा लिया जावे, तो दो एक देश और पराजित हो सकते हैं। विचारा कि यह अवसर उत्तम है, क्योंकि रात्रि है, किसी को मालूम भी न होगा। अतः राजा साधु की ओर बिना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सवारी पैदल ही चल दिये। जब साधु ने पांव की आहट सुनी तो पूछा। कौन है? राजा ने कहा—मैं आपका सेवक राजा हूं। साधु ने प्रश्न किया कि तू इस समय क्यों आया? राजा ने सब हाल वर्णन किया और कहा कि आप दस बीस सहस्र मन सुवर्ण बना दें। साधु ने कहा—बता दीन तू है अथवा हम? मांगने तू आया अथवा हम? यह उत्तर सुन कर राजा ने कहा-निःसन्देह दीन तो मैं ही हूं। आप दया करके सोना बना दें। साधु ने कहा—अवश्य बना देंगे, तू आया कर। राजा ने साधु के पास जाना आरम्भ कर दिया। और साधु ने उसको तत्त्वज्ञान का उपदेश कर दिया। एक वर्ष में राजा तत्त्वज्ञान का विद्वान् हो गया और उसकी वह वासनाएं नष्ट हो गईं। साधु ने जब देखा कि राजा अब दीन नहीं रहा। उसकी आत्मिक दशा सुधर गई तो साधु ने राजा से कहा कि तुम दस सहस्र मन ताम्र ले आओ, हम सुवर्ण बना दें। राजा ने हँस कर उत्तर दिया—स्वामिन्! वह ताम्र तो सुवर्ण बन चुका, अब कोई आवश्यकता नहीं।

वास्तव में तृष्णा-वश मनुष्य अनित्य को नित्य बनाने के हेतु सहस्रों प्रकार के पाप करता है। क्या उस मनुष्य से अधिक कोई मूर्ख हो सकता है कि जो अनित्य को नित्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होने का प्रयत्न करता है। अनित्य में नित्य बुद्धि अविद्या है। मनुष्य के कुल बाह्य साधन और सामान अनित्य हैं; इनको नित्य बनाना असम्भव है। बड़े बड़े मूर्ख राजाओं ने पत्थरों के गढ़ बनाये, सहस्रों तोपें बनाई, शरीर की रक्षार्थ बड़े बड़े वैद्य डाक्टर रक्खे, बाडीगार्ड और रक्षक रक्खे; क्या उन राजाओं के शरीर बच गये? मूर्ख मनुष्य नहीं जानते कि महाराजा जार्ज-पञ्चम इस समय सब से बड़े राजा हैं। उनके राज में एक कोटि उन्नीस लक्ष वर्ग मील पृथ्वी है। जिस में चालीस कोटि से अधिक उसकी प्रजा है। उसकी राजधानी लंडन संसार के सब नगरों में बड़ा नगर है। पारलामेण्ट का उत्तम प्रबन्ध है। इन सब वस्तुओं के होते हुए भी उसके मां बाप मर गये, भाई मरे, बेटा मरा। जो सम्पूर्ण संसार के अज्ञानी पुरुषों को शिक्षा दे रहा है, कि इतनी शक्ति और सामिग्री होने पर उत्पन्न होने वाला शरीर स्थिर न रह सका। भला इन से अधिक कौन मूर्ख मनुष्य हो सकता है कि जो धन के भरोसा पर परमात्मा के अटल नियमों की ओर संकेत करता है और बताता है कि जो नित्य है, इसको कोई शक्ति नष्ट नहीं कर सकती। जो वस्तु अनित्य है, उसकी कोई शक्ति रक्षा नहीं कर सकती। अनित्य का नष्ट होना अवश्य है, नित्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का स्थिर रहना अवश्य है। नित्य के काम नित्य से चल सकते हैं। नित्य की उन्नति अनित्य से नहीं हो सकती। यदि ध्यान-पूर्वक ज्ञान-दृष्टि से ऋषियों के सिद्धान्तों को विचारो, जो बिना किसी सांसारिक प्राकृतिक सामिग्री के जंगलों में रहते हुए भी राजाओं के राजा थे। किसी की शक्ति न थी कि उनको कष्ट दे सके। इनको कष्ट दे ही कौन सकता था! क्योंकि वह ऐसी बलवान् शक्ति के आश्रय थे कि जिसके सामने संसार की सम्पूर्ण शक्तियां तुच्छ हैं। गवर्नमेन्ट का पांच रू० मासिक का सिपाही बड़े बड़े धनपतिकों को पकड़ लाता है। क्या वह चपरासी की अपनी शक्ति होती है! उत्तर मिलता है नहीं। किन्तु वह उस शक्ति के आश्रय जिसके प्रबन्ध में सम्पूर्ण संसार के राजा जी रहे हैं। जिस के यंत्र अग्नि, पानी, वायु, विद्युत ऐसे बलवान् हैं कि कोई बड़े से बड़ा राजा भी इस का प्रबन्ध नहीं कर सकता। इसके यंत्र भूचाल आदि ऐसे दृढ़ हैं कि एक क्षण में राजाओं के राज्य को सेना आदि सहित नष्ट भ्रष्ट कर सकते हैं। चाहे सामुद्रिक जहाज हों अथवा वायुयान, परमात्मा की शक्ति का सामना नहीं कर सकते। अज्ञानी अपनी अज्ञानता से परमात्मा को त्याग प्राकृतिक वस्तु का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आश्रय लेते हैं। परन्तु इस अविद्या के कारण अपने आप को दुःखमय बना लेते हैं। जो मनुष्य परमात्मा के ज्ञान से अपने आत्मिक बल को बढ़ा लेते हैं, उनको दबाने वाली कोई शक्ति नहीं। जबकि सरकारी सिपाही निज राजा के भरोसे बड़े-बड़े मनुष्यों को पकड़ लाते हैं, तो ईश्वर-भक्तों को किसका भय हो सकता है। वह जानते हैं कि मृत्यु हमारे स्वामी के हाथ है। अतिरिक्त उसके कोई नहीं मार सकता। बलवान् मनुष्य दूसरों के मारने का विचार कर सकता है, परन्तु मारने में सफल नहीं हो सकता। मनुष्य के हाथ में केवल उसका विचार है, वह कुविचार से अपने आप को पापी बना सकता है, परन्तु अपने शत्रुओं को हानि पहुंचा देना उस के अधिकार से बाहर है। जितना मनुष्य का भोग दुःख अथवा सुख है, वह प्रत्येक दशा में उसको भोगना पड़ेगा। जिस मनुष्य का भोग उत्तम है, वह अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति नष्ट कर दे, धनवानों को कठोर से कठोर गालि प्रदान करे, किसी की पर्वाह स्वप्न में भी न करे, तो भी उस के सुख के साधन सब ही एकत्रित रहेंगे। सुभाग्य मनुष्य कहीं भी चला जावे, उसे दुःख नहीं हो सकता। वह मनुष्य मूर्ख हैं जो सुख को धन के आश्रय समझते हैं। धन से सुख नहीं हो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सकता, किंतु धन दुःखदायी है। जो काम धनवान् धन से नहीं कर सकते, वह ईश्वर-भक्त सरलता से कर सकते हैं। संसार में धन के चार फल दृष्टि पड़ते हैं। प्रथम यह कि धनवान् भोजन उत्तम खा सकता है, परंतु ऐसा कोई भोज्य पदार्थ नहीं जो पशुओं को न मिलता हो। मांस-भक्षी मनुष्य मांसको उत्तम समझते हैं, परन्तु जिन पशुओं का मांस मनुष्य सेवन करते हैं, उन्हीं का पशु भी सेवन करते हैं। ऐसा कौनसा जीव है, जिसका मांस बाज आदि पक्षी अथवा व्याघ्र गीदड़ आदि पशुओं को प्राप्त न होता हो। मनुष्य मेवे और अन्न खाते हैं, जिसको पशु पक्षी भी खाते हैं। मनुष्य के भोज्य पदार्थ में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो दूसरे जीवों को अप्राप्त हो जब कि वह भोजन जिस को धनवान् खाते हैं, परमेश्वर ने पशुओं को भी दे रक्खा है। तो इस के लिये ईश्वर-भक्ति को त्याग कर धन एकत्रित करने लग जाना अविद्या नहीं तो और क्या है? हम ने अनुभव किया है कि ईश्वर-विश्वासी मनुष्य धनवानों से नित्य उत्तम भोजन करते हैं। यथा साधुओं को देखिये वह भोजन करने में किसी अमीर से कम नहीं, क्योंकि उनको प्रत्येक निर्धन और धनवान् निमंत्रण देते हैं और अपने भोजन से उत्तम भोजन जिमाते हैं। द्वितीय सुख

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जिस को धन से प्राप्त होना समझते हैं; सेवकों से काम लेना है। इस काम में भी ईश्वर-भक्त धनवानों से अच्छे रहते हैं, क्योंकि ईश्वर-भक्तों को प्रत्येक स्थानमें सेवक मिल जाते हैं। राजा, महाराजा भी उन की सेवा का परम कर्तव्य समझते हैं, जैसाकि एक उर्दू कवि का वचन है— "अय हुमा पेशे फकीरी सल्तनत क्या माल है। बादशाह आरो हैं पापोश गदा के वास्ते।" जिन मनुष्यों ने काशी में स्वामी भास्करानन्द की दशा को देखा होगा उन को पता है, कि ईश्वर-भक्तों के सेवक किस कदर हैं। तृतीय फल जो धन से निकलता है, वह प्रतिष्ठा है। परन्तु ईश्वर-भक्तों के सन्मान के आगे धनियों का सन्मान तुच्छ है। वह जिस देश में जावें, वहां उनका सन्मान प्रस्तुत है। स्वामी रामतीर्थ यदि भारतवर्ष में प्रतिष्ठा पाते थे तो, अमरीका में भी उनकी प्रतिष्ठा कम न थी। जितना सन्मान आज बाबा नानक जी का सिक्खों के हृदय में है, क्या महाराजा रणजीतसिंह का भी उतना है? क्या जितनी प्रतिष्ठा व्यास जी की हिन्दुओं के हृदय में है, क्या युधिष्ठिर की भी उतनी प्रतिष्ठा हो सकती है? प्रयोजन यह है कि जितनी प्रतिष्ठा ईश्वर-भक्तों की होती है, उतनी धनवानों की नहीं। चतुर्थ यह कि धनवानों को विश्वास रहता है कि-जब कोई आपत्ति आवेगी धन से उसको नष्ट कर देंगे। जैसाकि किसी नीति का वचन है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आपत्ति के लिये धन एकत्र करना चाहिये। धनवानों को क्या आपत्ति हो सकती है, यदि आपत्ति आवेगी भी तो धन से नष्ट हो सकती है। परंतु वह यह नहीं जानते, आपत्ति जब आवेगी, धन भी नष्ट हो जावेगा। परंतु जो मनुष्य ईश्वर-भक्त हैं वह निर्भय रहते हैं। कोई आपत्ति भी उनका सामना नहीं कर सकती। क्योंकि वह जानते हैं परमात्मा के राज्य में आपत्ति कोई वस्तु नहीं। जो वह करता है अच्छा करता है। यद्यपि रोगी को कड़वी औषधि बुरी मालूम होती है, परन्तु उसको गुणदायक होती है। इसी प्रकार ईश्वर के न्याय से जो हमको दंड मिलता है, वह हमारे मन से पापों की मलिनता को दूर करता है, इस कारण वह भी उपयोगी है। मनुष्य को जब तक तत्त्वज्ञान नहीं होता, तब तक उसको प्राकृतिक पदार्थ उत्तम जान पड़ते हैं। परन्तु तत्त्वज्ञानी जानते हैं कि धन की तृष्णा जितनी दुखदायक है, अन्य उससे एक पदार्थ दुखदायक नहीं। यथा सर्प स्पर्श में नरम प्रतीत होता है, परन्तु काटने से मृत्यु आ जाती है। इसी प्रकार यह चमत्कारिक पदार्थ धन तथा स्त्री यद्यपि देखने में उत्तम मालूम पड़ती हैं, परन्तु वास्तव में सत्य से दूर ले जाकर मृत्यु का कारण होती हैं। क्योंकि परमात्मा ने आत्मा को इंद्रिय, मन और शरीर का राजा बनाया है। परन्तु इन चमत्कारिक पदार्थों के आवरण से धोका खाकर आत्मा इंद्रियों का सेवक हो जाता है

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और सत्य धर्म से दूर हो जाता है। उस समय मन जिस प्रकार आत्मा को नचाता है, वैसे ही आत्मा नाचता है। अतएव परमात्मा ने वेद में उपदेश किया है कि चमत्कारी वस्तुओं के आवरण से सत्य का मुख छिपा हुआ है। यदि तुम चाहते हो कि आत्मिक बल में उन्नति हो और सत्य धर्म के ज्ञाता हो जाओ, तो सब से प्रथम उस आवरण को दूर करो। जब तक यह आवरण है, तब तक तुम सत्य को नहीं जान सकते। मनुष्य यदि सत्य से पतित हो जावे, तो उसका जीवन पशुओं से भी निकृष्ट हो जाता है। मनु ने स्पष्ट लिखा है कि लोभी, कामी, मनुष्य कभी धर्म को नहीं जान सकता। इसी कारण जो लोभ तथा काम में लिप्त नहीं हैं, उन्हीं को धर्म के जानने का अधिकार है। और जो लोभ और विषय में लिप्त हैं उनको धर्म के जानने का अधिकार ही नहीं। जिनको धर्म के जानने का अधिकार नहीं। आज भारतवर्ष में वह धर्म के आचार्य हैं! गृहस्थ का तो धन पैदा करना धर्म है, परन्तु भारत में कोटिपति संयासी कहे जाते हैं। लक्षों रुपया एकत्रित कर के उदासी नाम रख लिया। वास्तव में यहाँ अविद्या ने ऐसा पाँव जमाया है कि धर्म-नौका भँवर में जा पड़ी है। यद्यपि इस देश में ५२ लक्ष साधु हैं, परंतु इसी प्रकार यथा पाञ्चाल में नाई का नाम राजा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रख लेते हैं। यदि उन ९२ लक्ष में से ९२ भी साधु होते तो देश का कल्याण हो जाता। परन्तु यह संन्यासी उदासी नहीं, किंतु वान्ताशी अर्थात् वमन करके चाटने वाले हैं। बहुत से अल्पायु में साधु हो गये, जिन्हों ने संसार का कुछ देखा ही न था। साधुओं में आकर कुछ पढ़ लिख गये। गृहस्थों में कुछ प्रतिष्ठा होने लगी। अतिरिक्त इसके कि वह गृहस्थों का उपकार करते, उन्हीं से धन लेकर मठाधारी बनना और उन्हीं के धन से अपने शरीर का शृङ्गार करना और उन्हीं के धन से पुत्र देने के मिस से उनको पतित करना उनका धर्म होगया। धर्म कर्म को यह सब मिथ्या बताने लगे। यदि धर्म कर्म का उपदेश करते, तो सम्भव था कि कोई गृहस्थी उन से प्रश्न कर बैठता—महाराज ! आप क्या कर्म करते हैं ? उन्हों ने जगत् मिथ्या बता कर धर्म कर्म को मूल से नष्ट कर दिया यदि कोई इन मिथ्यावादियों से पूछे कि महाराज ! जब संसार मिथ्या है, तो आप का यह वचन भी संसार में होने से मिथ्या होगा। यदि संसार सत् है, तो भी आप का यह वचन मिथ्या ही है। शोक है ! कि गृहस्थ मनुष्यों ने पढ़ना त्याग दिया। अतएव मिथ्या आडम्बर वेषधारी उनको धोका में डाल अधर्म का उपदेश करते। इधर संसार को मिथ्या बताते हैं, उधर गृहस्थों से धन एकत्रित करके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उत्तम उत्तम सुन्दर भवन बनवाते हैं तथा सुन्दर वस्त्र धारण करते हैं। और वाहनारूढ़ होकर आनन्द करते हैं। जब कोई प्रश्न कर देता है—महाराज ! आप तो जगत् को मिथ्या बताते हैं। पुनः आप ऐसे कार्य क्यों करते हैं ? तो उत्तर देते हैं—यह सब भी मिथ्या भ्रम ही है। यदि कोई गृहस्थ बुद्धिमान् दश बीस पादत्राण से पूजा करदे। जब वह न्यायालय में केस चलावें, तो यही उत्तर दे—महाराज ! यह तो मिथ्या ही है। आपने क्यों न्यायालय की शरण ली, तो उनको विदित हो। परंतु अभागे गृहस्थ हैं। यदि वह विद्वान् होते, तो उन की दाल न गलती। उनकी दाल उन्हीं देशों में गलती है, जहां मनुष्य अज्ञानी हैं। साधु वही हो सकता है कि जिस में साधु के लक्षण हों और वह पतित संसार के उद्धार का यत्न करे। नहीं तो कच्चा घर तो त्यागा, उत्तम पक्का भवन बनवा लिया। कम्बल छोड़ा, दुशाला ओढ़ लिया, एक पुत्र त्यागा, शिष्य बना लिये। स्त्री त्यागी, शिष्या प्रस्तुत करली और सबके धर्म को नष्ट कर दिया !

हिंदी अनुवाद माण्डूक्योपनिषद् का समाप्त हुआ।

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्ति !!!

इति श्रीस्वामी दर्शनानन्द सरस्वती कृत उपनिषद्-प्रकाश का हिन्दी अनुवाद समाप्त।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE